वर्ष ३४ अंक १२

दिसम्बर १९५३

हमारे प्रधानमन्त्री मा. पं. जवाहरलाल नेहरू
चिरायु होवें !

कार्तिक २०१०

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु. वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

पुरुषोंके लिये शक्ति और स्नायुकी पुष्टिका साधन

जीवनीय शक्ति वर्धक

शतावर, अश्वगंधा, मोचरस, ताळमूली और विदारी आदि पौष्टिक, वीर्यवर्धक, शुक्रशोधक, बल और मेधावर्धक, रक्त और स्नायुकी पुष्टिकारक रसायनिक दवाओंसहित अंबर, केशर, कस्तूरी प्रभृति रसायनोंके योगसे यह औषधी तैयार की है। स्मरण-शक्तिका ह्रास, मस्तिष्क-दुर्बलता, हृदय-रोग, अनिद्रा, अग्नि-मंदता, पाक स्थली पीडा, मूत्र दोष और धातु क्षीणता आदि बीमारियोंकी यह अमोघ दवा है।

सायं-प्रातः-१-१ खोराक खाकर दूध शक्कर पीना। मुग्ध होकर आप इस जातीय औषधिके बीच इसकी श्रेष्ठताकी परीक्षा कर सकते हैं।

मूल्य १५ दिन योग्य ३० मात्रा का २) रु. पोस्ट व्यय ॥।=) रु ६० मात्रा का ५॥) रु पो० व्य० १=) रु.

आयुर्वेद सूरि- पं० बालकृष्ण शर्मा वैद्यराज— भोपाल

पेटभर भोजन करिये

गेसहर [गोलियां] गेस का बढना, पैदा होना, मन्दाग्नि, बादी, वायु-गोला, शूल, कृत्रिम अहकार, पेट का फूलना, बदहजमी, पेट में पवन का घुंघवाना, भूख की कमी, दिमाग में अशांति हो जाना, घबराहट, थकावट, हृदय की कमजोरी, पल्पीटेशन, ब्लडपेशर, दस्त की रुकावट, नींद की कमी वगैरह को दूरकर दस्त हमेशा साफ और खुलासा लाती है। अज पाचन करके कडाके की भूख लगाती है, शरीर में रुधिर बढाकर-शक्ति प्रदान करती है। लिवर, आंत, प्लीहा और पेट की हर एक शिकायत के लिए, अद्वितीय इलाज है। छोटी शीशी ५० गोली की० १॥) बडी शीशी १५० गोली की० ४)

शक्ति देनेवाली दवा

दुग्धानुपान [गोलियां] शारीरिक कमजोरी, बन्धकोष्ठ, पेशाब, की शिकायतें, दिमाग की कमजोरी, बीमार के बाद की निर्बलता, रुधिर की कमी, शरीर में दर्द का होना, सुस्ती, थकावट का आना, छाती में दर्द, का होना, इत्यादि शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करके, शक्ति और उत्साह तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। वजन बढता है, शरीर तंदुरुस्त बनता है। छोटी शीशी ३२ गोली की० १॥) बडीशीशी ९६ गोली की० ४) वी. पी. खर्च अलग।

मधुप्रमेह–मीठापेशाब) के लिये

वंगेटोन वंगेटोन– मूत्रमार्ग के रोग. बहुमूत्रता, मधुमेह, पेशाब में जलन इत्यादि के लिये, मधुमेह–डायाबिटिस–के लिये अकसीर है। की० ४० गोली रु २।)

आँखों की तमाम शिकायतों के लिए शर्तिया

न० प्र० सुरमा सच्चे मोतियों के इस सुरमे से मोतिया-बिंद, फुला, खील, जाला, शोर्टसाइट (Short Sight) सुर्खी, रतौंधी, पानी निकलना वगैरह दूर होकर रोशनी बढती है, फी शीशी का १।) रु० तथा २॥) रु०।

अनुभूतघृत शारीरिक– शिथिलता दूर कर नसों में मजबूती लाकर स्तम्भन शक्ति बढाता है। कीमत फी शीशी १।।) रु०।

बहिरापन !

कान में से पीप मवाद निकलना, चस्काशूल होना, पर्दे में तकलीफ, सीं–सीं आवाज होना, बधिरता–बहिरापन इत्यादि कान के भयकर रोगों के लिए:–

" रसिक कर्णबिन्दु " [ईयर ड्राप्स]

इस्तेमाल करें। कीमत शीशी १।) रु० तीन शीशी ४।) रु०। तीन शीशी के सेवन से स्पष्ट सुनाई देता है।

कान के पुराने रोगोंके लिये

महेश पील्स

कानके पुराने रोगों के लिये उत्तमोत्तम दवा है, कान में डालनेके लिये रसीक कर्ण बिंदु और खानेकी दवा महेश–पील्स यह दोनों दवाका एक साथ सेवन करने से कान के पुराने से पुराना रोग दूर होता है, बहिरापन दूर होता है और साफ सुनाई पडता है। ३२गोली शीशी का रु २॥) खर्च अलग।

दम, श्वास के लिये

दमोन

हांफ, श्वास चढना, खासी, पुराने से पुराना दम, थकावट इत्यादि के लिये अकसीर है, फी शीशी रु. १॥ वी पी अलग.

खील, दाग के लिए

खीलोन लोशन

मुँह पर के खील, भद्दे व काले दाग आदि मिटाकर चर्म को मुलायम व कोमल बनाता है। काली चमडी को सफेद बनाकर सौंदर्य व कांति में वृद्धि करता है। फी शीशी १।) रु० तीन शी० ३॥) रु०

वी० पी० से मगाने के लिये जामनगर लिखें–**दुग्धानुपान फार्मेसी १४ जामनगर (सौराष्ट्र)**

स्टॉकीस्ट—

इलाहाबाद– अग्रवाल मेडीकल हॉल, ९६ जॉनस्टोनगंज।
बनारस– राधेलाल एण्ड सन्स, चौक, बेटरीवाला।
देहली– जमनादास एण्ड कं०, चांदनी चौक।
नागपुर– अनन्तराय ब्रदर्स, किराना आली इतवारी।
अयोध्या– हमारा दवाखाना बाबूबाजार।
कलकत्ता– सौराष्ट्र स्टोर्स, १८–मलिक स्ट्रीट।
कानपुर –गुजरात मेडीकल स्टोर्स, जनरलगंज।
झरीया– त्रिवेदी फार्मेसी, पो० बॉ० ४०
बंबई– वीछी ब्रधर्स, कं ७९ प्रीन्सेस स्ट्रीट

गुप्तधन

क्या है? एवं कैसे प्राप्त करें। हर एक के लिये उपयोगी पुस्तक मुफ्त मँगवाकर पढें।
लिखें:— **श्री शाम कं० ५ जामनगर (सौराष्ट्र)**

मंगवाते समय ' वैदिक धर्म ' का हवाला अवश्य दीजिए।

वर्ष ३४ **वैदिक धर्म** अंक १२

क्रमांक ५९

कार्तिक, विक्रम संवत् २०१०, दिसम्बर १९५३

सब कुटिलता दूर करो

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥

ऋ० ७।१।१०

(प्रशस्तां धियं पनयन्तः) प्रशंसनीय बुद्धिको धारण करनेवाले (इमे शूरा नरः) ये शूर नेता पुरुष (वृत्र-हत्येषु) घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेके लिये किये जानेवाले युद्धोंमें (विश्वाः अदेवीः मायाः) सब राक्षसी कपट चालोंको (अभि सन्तु) दूर करें, पराभूत करें और विजयी बनें। (ये मे) ये ऐसे जो वीर हैं वे मेरे वीर हैं। ऐसे वीर हों ऐसा मैं चाहता हूं।

वीर पुरुष अपने मनमें उत्तम शुभ विचार ही धारण करें। प्रजाजनोंके संरक्षणके विचार उनके मनमें हों। जो शत्रु अपने राष्ट्रको चारों ओरसे घेर रहे हैं, विविध कपटताएं करके धोखा दे रहे हैं, नाना प्रकारसे जो फसाते हैं, उनका सामना करो और अपना विजय प्राप्त करो, शत्रुओंको दूर भगा दो। कपटी शत्रुको रहनेके लिये स्थान भी न मिले ऐसी वीरता धारण करो। अपने राष्ट्रमें ऐसे वीर बढें ऐसा प्रबंध करना उचित है।

▲▲▲

समस्त भारतमें

सर्वप्रथम उत्तीर्ण परीक्षार्थी

स्वाध्यायमण्डल-परीक्षा-समितिकी ओरसे सर्व प्रथम परीक्षार्थियोंका अभिनन्दन किया जाता है। इन परीक्षार्थियोंको जो पारितोषिक प्रदान किये गये हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

१- **विशारद-** 'श्री केशव पारितोषिक' १०) रु. की पुस्तकें। श्रीयुत कचरुलालजी पुसारामजी दायमा, जालनाकी ओरसे तथा ११) रु की पुस्तकें स्वाध्यायमण्डलकी ओरसे।

२- **परिचय-** ८) रु की पुस्तकें स्वाध्यायमण्डलकी ओरसे।

३- **प्रवेशिका-** ६) रु. की पुस्तकें स्वाध्यायमण्डलकी ओरसे।

४- **प्रारम्भिणी-** ४) रु. की पुस्तकें स्वाध्यायमण्डलकी ओरसे तथा ५) रु की पुस्तकें श्रीयुत श्री. गो ठोसर, बी ए. आकोलाकी ओरसे।

श्री सिद्धेश्वर बळराम महाराज

श्री छगनलाल कल्याणजी परमार

श्री अरविंदभाई डाह्याभाई पटेल

श्री कु. पद्मा जयकृष्णपन्त जोशी

प्रारम्भिणी- श्री सिद्धेश्वर बळराम महाराज, बीदर। प्राप्तांक ९७।१००

प्रवेशिका- श्री छगनलाल कल्याणजी परमार, चीखली। प्राप्तांक १७८।२००

परिचय- श्री अरविंदभाई डाह्याभाई पटेल, मण्डाला। प्राप्तांक २४९।३००

विशारद- श्री कु० पद्मा जयकृष्णपन्त जोशी, आकोला। प्राप्तांक ३०४।४००

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखाङ्क ४२]

लेखक— प. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

• • • • • • • •

स्व-कर्म द्वारा जन-सेवा करनी चाहिये

राष्ट्र पुरुष

ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर एवं अन्य जातिके लोग, ऐसे पांच प्रकारके लोग देशमें रहते हैं। विराट् पुरुषके विशाल देहके ये अवयव हैं। ज्ञानी-विद्वान् उसके मस्तकके स्थानपर, शूर-वीर उसके बाहूके स्थानपर, व्यापारी-किसान उसके पेटके स्थानपर और कारीगर उसके पैरोंके स्थानपर समझने चाहिये यह है विराट् पुरुष। विश्वमें अवस्थित सभी वस्तुएं इस विराट् पुरुषके शरीरके अवयव हैं। सूर्य-चन्द्र उसकी आंखें, वायु प्राण, अन्तरिक्ष पेट, पृथ्वी पैर तथा अन्य पदार्थ उसके विभिन्न अवयव हैं मानो नदियाँ उसके शरीरकी धमनियाँ अथवा रक्तवाहिनियाँ हैं और वृक्ष एवं वनस्पतियाँ केश हैं। वेदने उस विश्वपुरुषकी ऐसी कल्पना की है। एतद्विषयक वेद-वचनोंका उल्लेख पूर्व हो चुका है। 'विश्व एक विराट् पुरुष है' ऐसा कहकर हमें यह मान लेना है कि समस्त विश्वमें एक जीवन है।

वास्तवमें समस्त विश्व उस विश्व पुरुषका एक शरीर है तथा वेद, उपनिषद् एवं गीताने इसी विश्वपुरुषका अनेक नामोंसे वर्णन किया है। तथापि हम अपने विचार-सौकर्यके लिये मानव समाजको एक पुरुष मानेंगे तथा उससे भी कुछ आगे बढकर इस पुरुषको हम अपने राष्ट्र जितना मानेंगे। किन्तु पाठकोंको यह न भूल जाना चाहिये कि यह मानना केवल सुबोधताके लिये है। क्योंकि पृथ्वीपर एक एक राष्ट्र भिन्न भिन्न होनेपर भी— '

समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्। (ऐ० ब्रा०)

'समुद्रपर्यन्त व्याप्त समस्त पृथ्वीका एक शासक हो' ऐसी महत्वाकांक्षा वैदिक ऋषियोंकी थी। उनकी राष्ट्रीय दृष्टि इतनी विशाल थी। यह दृष्टि अखिल मानव जातीकी सुखसुविधाको देखा करती थी और मानवजातिमें भेद नहीं करती थी। यह महत्वका सिद्धान्त यहाँपर है।

युद्धका कारण

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रसे भिन्न, एक दूसरेका चाहे जो करे, इस प्रकारकी विचारसरणी प्रचलित होजानेपर उनमें झगडे उत्पन्न हो जाते हैं और इनका अन्त युद्धमें होता है। किन्तु 'अखिल मानव जातिः एक अखण्ड विश्व-देह है' तथा 'समस्त राष्ट्र एवं सम्पूर्ण मानवजाति उसके शरीरमें है' 'इस विराट् देहके अवयव ही ये समस्त मानव हैं' ऐसा एकबार हृदयङ्गम होजानेपर प्रत्येक अपना यह कर्तव्य समझने लगता है कि 'मैं सबके सुख और शान्तिके लिये प्रयत्न करूं' और अपने इस ध्येयके लिये वह प्रयत्न भी करता है। यदि कोई इस सिद्धान्तको न माने तो उसके साथ युद्धका प्रसङ्ग आ सकता है, किन्तु वह भी इसी सिद्धान्तके आधारपर कि 'समस्त विश्व एक शरीर है'। उदाहरणार्थ-हमारे शरीरमें यदि कोई फोडा हो जाय तो उसके विषसे समस्त शरीरको बचानेके लिये हम उसे काट देते हैं तथा उसमेंसे पीप निकाल देते हैं। यह हमारा काटना प्रेमके कारण होता है। इसी प्रकार 'एक विराट् पुरुष विश्वका देह है' ऐसा मान लेनेपर कभी संघर्ष होगा ही नहीं और यदि हुआ भी तो शरीरके फोडेको काटनेके समान प्रेमसे ही होगा, समस्त देहकी विष बाधा दूर करनेके लिये ही होगा। यह तो दृष्टिकोण ही भिन्न है। यहाँ मुख्यरूपसे विश्व-सेवा है, क्योंकि यह विश्वरूप परमेश्वरकी सेवा है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः।

(गीता०)

'स्वकर्मसे उस ईश्वरकी पूजा करनेपर मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है'। यहाँ स्वकर्मद्वारा उस विश्वरूपकी सेवा करनी है। अपना ऐश्वर्य बढानेके लिये क्षत्रिय लोग युद्ध नहीं करेंगे। वे तो विश्वरूप ईश्वरकी सेवा करके उसे

प्रसन्न करनेके लिये युद्ध करेंगे। इस प्रकार यहाँपर युद्ध द्वारा ईश्वरकी प्रसन्नता सम्पादित करनी है, उसकी पूजा करनी है या उसकी प्रसन्नता बढानी है।

ज्ञानीजन ज्ञानका प्रसार करके, क्षत्रिय अपने रक्षण-कार्य द्वारा, वैश्य लोग खेती, गोरक्षक, पशुपालन एवं वाणिज्य द्वारा तथा कारीगर अपने कलाकौशलको उन्नति द्वारा ईश्वरकी सेवा करेंगे। प्रत्येक मनुष्य जब इस प्रकारकी सेवा करने लगेगा तभी समस्त जनपदकी प्रसन्नता हमें दिखाई पडेगी और विश्वरूपी परमात्मा निस्सन्देह प्रसन्न होगा।

इस विषयमें थोडा और अधिक स्पष्टीकरण अपेक्षित है। अतः अब वही प्रस्तुत करना आवश्यक है—

शरीरोंका स्वास्थ्य

शरीरकी ओर दृष्टि डालिये। यहाँपर सैकडों छोटे-बडे, अधिक महत्त्वके एवं कम महत्त्वके अनेक अवयव हैं। जब तक समस्त अवयव सम्पूर्ण शरीरकी स्वस्थताके लिये जुटे रहते हैं तब तक उसका स्वास्थ्य उत्तम रहता है। यदि कोई अवयव अपने कर्तव्यसे जी चुराने लगता है तो वहाँका आरोग्य बिगड जाता है और फिर उसका उपचार करना आवश्यक हो जाता है। कभी कभी तो इस प्रकारका निकम्मा अवयव काट भी देना पडता है; क्योंकि सम्पूर्ण शरीरको स्वस्थ रखना ही मुख्य ध्येय है और इसीलिये अवयवोंकी इच्छा या अनिच्छा गौण है।

आंखोंको देखनेका कार्य करना है और शरीरकी सेवाके लिये यही उसका कर्तव्य है। इसी प्रकार नाक, कान, मुंह, जीभ, त्वचा आदि इन्द्रियोंको अपने अपने कार्य शरीरकी स्वच्छताके लिये ही करने हैं।

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।
(गीता)

अपने अपने स्वयके कर्मसे उस (अखण्ड शरीर) की पूजा की तो मनुष्य (शरीरका आरोग्य सुरक्षित रखनेके लिये) सिद्धि प्राप्त कर लेता है। शरीरके राज्यमें गीताका यह भाव देखनेपर उसका यहाँ किया गया अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

समस्त शरीरके स्वास्थ्यके लिये यदि इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य उचित प्रकारसे न करें तो उससे इन्द्रियोंका नाश तो होगा ही, किन्तु साथ ही शरीरका नाश भी अवश्यम्भावी है।

ये पुरुषे ब्रह्मविदुः ते विदुः परमेष्ठिनं। (अथर्व)

'जिन्हें अपने शरीरके ब्रह्मका ज्ञान है उन्हें परमेष्ठीका ज्ञान हो जाता है।' अतः शरीरका विषय बारबार मनन करके मनमें जमा लेना चाहिये। एतदर्थ हम यह देखेंगे कि यदि किसी एक इन्द्रियने विद्रोह कर दिया तो क्या होगा? उदाहरणार्थ पेटको लीजिये। प्रथम आंखें खानेके पदार्थको देखती हैं, उसके बाद पैर वहाँ जाते हैं, हाथसे वह पदार्थ लिया जाता है, स्पर्श द्वारा उसकी जांच होती है, फिर नाक द्वारा सूंघ लेनेपर यह निर्णय होता है कि वह पदार्थ खाने योग्य है। इसके बाद वह पदार्थ मुंहमें जाता है, वहाँ दांत उसे चबाकर देखते हैं, जिव्हा रुचि लेती है, इतने सबके द्वारा स्वीकार योग्य मान लेनेपर वह पदार्थ पेटमें पहुँचता है। वहाँपर उसका पचन होकर रक्त बनता है, वह सारे शरीरमें घूमता है और फिर पूरे शरीरका पोषण होता है। यहाँ हमें दिखाई पडता है कि प्रत्येक अवयव शरीर-सेवाके लिये पराकाष्ठाका प्रयत्न करता है। पेटके पास आया हुआ पदार्थ यदि वह अपने ही पास रख ले, उसे पचाकर रक्तद्वारा सम्पूर्ण शरीरमें न भेजे तो क्या होगा? पेट फूल जाएगा और विकार उत्पन्न होंगे। इस प्रकार पेटके स्वार्थी व्यवहारके कारण सारा शरीर क्षीण होकर मृत्यु होनेका भय उत्पन्न हो जाएगा। शरीरके एक अवयव द्वारा भी इस प्रकार स्वार्थी बन जानेपर सम्पूर्ण शरीरके नष्ट होनेकी नौबत आपहुचती है। तब यदि अधिक अवयव स्वार्थी बन जाय तो विनाश शीघ्र एवं अवश्यम्भावी ही है। अवयवोंकी निस्वार्थ सेवापर ही यह शरीर आरोग्य सम्पन्न रहा करता है।

विश्वमें अवस्थित यज्ञ

बाहर विश्वमें देखिये। सूर्य प्रकाशता है, इसलिये कि वह सम्पूर्ण विश्वको प्रकाश देकर उसका मार्गदर्शन करे। चन्द्र सबको आह्लाद देनेके लिये प्रकाशता है। वायु सबको जीवन देनेके लिये बहता है। नदियाँ सबको जीवनरूपी उदक देनेके लिये बहती हैं। पृथिवी सबको आधार देती है। यही बात सर्वत्र पृथ्वीपर दिखाई पडती है। उसके सभी पदार्थ परोपकारमें लगे हुए हैं। मानो विश्व-सेवा ही उसका स्वभावधर्म बन गया है। वहाँ स्वार्थका लवलेश

भी नहीं है। आग जलती रहेगी और प्रकाश दिखाती रहेगी। यह उसका स्वभाव ही है। इस विश्वके सब पदार्थ, समस्त देवता इस प्रकारसे इस विश्वरूपी विराट् पुरुषकी सेवा करते रहते हैं और इसी सेवासे यह समस्त विश्व स्वस्थ है। यदि कोई देवता अपना काम बन्द कर दे तो सारे विश्वका नाश हो जायेगा। 'देव अथवा देवता' शब्दोंका अर्थ 'देवो दानात्' अर्थात् जो दान देता है, सहायता करता है एवं उपकार करता है वह देव है। विश्वके देव इस प्रकार संसारकी सेवा किया करते हैं और इस विश्वसेवाके कारण ही सबको सुख एवं आनन्दकी प्राप्ति हो रही है।

हमने जो शरीरमें देखा वही विश्वमें देखा। दोनों ओर 'स्वकर्मसे विश्वकी पूजा करनेपर आनन्दकी प्राप्ति होती है' यही नियम है। यह विश्वका नियम है और यही ऋत एवं सत्य नियम है। यही शाश्वत सत्य है। इसी नियमपर विश्वका स्वास्थ्य अवलम्बित है। यदि यह नियम भङ्ग होगा तो विश्वमें अवस्थित साम्य नष्ट हो जाएगा और फिर तो प्रलय ही निश्चित समझिये। शरीर एवं विश्वमें अध्यात्मका यह अटल एवं शाश्वत नियम चालू है। हमें इसका खूब अभ्यास करना चाहिये।

शरीरके अन्दर पेटमें खाये हुए अन्नका रक्त बन जाता है और वह सम्पूर्ण शरीरमें घूमता रहता है, इस कारण समस्त शरीर उत्तम रहता है। यदि कोई अवयव अपने ही पास रक्तको सगृहीत रखनेका प्रयत्न करे तो उस स्थानपर सूजन आजाएगी। तब हमें यह प्रयत्न करना होगा कि वह रक्त किसी प्रकार घूमता रहे, अन्यथा वह अवयव काट देना आवश्यक होगा।

राष्ट्रका धन

शरीरमें जिस प्रकार रक्त घूमता रहता है उसी प्रकार राष्ट्रमें धन भी घूमना चाहिये। यदि वह पूरे राष्ट्रमें न घूमकर किन्हीं व्यक्तियोंके पास जमा हो जाएगा तो उसका अर्थ यह होगा कि वह भाग सूज गया है और परिणाम स्वरूप कोई ऐसी योजना बनानी होगी कि जिससे वह धन लगातार फिरता रहे। अन्यथा इस धनके कारण राष्ट्रमें अनेक प्रकारके दंगे होंगे और जबतक धन बराबर नहीं घूमेगा तबतक ऐसे दंगोंसे जनता ग्रस्त ही होती रहेगी।

शरीरमें हलचल रखनेवाले विचारोंको 'अध्यात्म विचार' कहा जाता है और विश्वमें हलचल मचानेवाले विचारोंको 'आधिदैविक विचार' कहा जाता है। इन दोनों स्थानोंके विचार परमेश्वरी व्यवस्थाके अनुसार प्रचलित हैं। हमें उनका मनन करके राष्ट्रके अन्दर तद्वत् आचरण करना चाहिये।

जबतक वैदिक पद्धति प्रचलित रही तबतक इन आध्यात्मिक एवं आधिदैविक सत्य नियमोंका अभ्यास खूब किया जाता था। इस प्रकारके एवं इसके आधारसे बननेवाले सामान्य नियम मानवी समाजमें किस प्रकार उतारे जावें, इस बातकी शिक्षा विशेष रूपसे दी जाती थी। इस प्रणालीको विलुप्त हुए अनेक शताब्दियाँ व्यतीत हो जानेके कारण हम ऐसा समझने लगे हैं कि यह आध्यात्मिक एवं आधिदैविक ज्ञान केवल बडे बूढोंके लिये ही है। हम आजकल किसी निराले ही दृष्टिकोणसे विचार करने लगे हैं। यही कारण है कि वैदिक विचारसरणीसे हम बहुत दूर जा पहुँचे हैं।

हमें यदि वैदिक विचारसरणीके समीप पहुँचना हो तो अपने शरीरमें प्रचलित अध्यात्मके व्यवहार एवं विश्वमें प्रचलित आधिदैवतके व्यवहारको देखकर, उसका अभ्यास करके एवं उसका भलीप्रकार निरीक्षण करके उसमेंके स्थायी नियमोंको समझ लेनेकी आवश्यकता है और उन्हें मानवी जीवनमें किस प्रकार ढाला जाय, यह भी समझ लेनेकी आवश्यकता है।

पांच प्रकारके लोग

हम 'स्वकर्म द्वारा विश्वसेवा करके सिद्धि प्राप्त करें' यह स्थायी नियम है। अब हमें इस नियमके आधारपर यह विचार करना है कि इसे मानवी समाजके लिये किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय।

हमारे मनुष्य समाजके पांच भाग स्वभावतः होते हैं। सभी देशोंके मनुष्योंमें उक्त पांच प्रकारके लोग कम या अधिक अथवा अव्यक्त या सुव्यक्त रूपमें रहते ही हैं। (१) ज्ञानकी ओर जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, (२) शौर्य, वीर्य, धैर्य, आदिकी तरफ जिनकी स्वाभाविक रुचि है, (३) खेती-बाडी, व्यापार एवं उद्यम आदि करके शान्तवृत्तिसे रहनें

वाले, (४) कलाकौशलय एवं शिल्प आदि पर अपनी आजीविका चलानेवाले, (५) वन्य लोग। ये पाच प्रकारके लोग प्रत्येक समाजमें रहते हैं। भारतीय आर्योंको चाहिये कि वे इनमेंसे पहले चार वर्गोंको शिक्षित करके उनके स्वाभाविक गुणोके विकासका प्रयत्न करें। इसीका नाम है चातुर्वर्ण्य व्यवस्था। कुछ लोग इसे 'जातिभेद' कहकर इसकी निन्दा करते हैं। किन्तु यह जातिभेद न होकर वर्णव्यवस्था है। भेद बढानेके लिये इस वर्णव्यवस्थाकी निर्मिति न होकर इसका उद्देश्य तो इस स्वभावभेदकी उत्तम व्यवस्था करना है। स्वभावभेद तो मूलत है और उन्हें नष्ट करना सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वे मूलतः हैं तथा स्वाभाविक हैं। मानवस्थित यह स्वाभाविक प्रवृत्ति दूर नहीं की जा सकती। ये प्रवृत्तियाँ अनेक प्रकारकी है। इनमें संघर्ष उत्पन्न न हो इसके लिये कुछ न कुछ व्यवस्था का होना आवश्यक है। इसी व्यवस्थाका नाम वर्णव्यवस्था है। प्रत्येक वर्णको उसके स्वभाव धर्मानुसार कार्य बाट दिये गये हैं। अपने स्वभावानुसार वर्णाश्रम विहित कर्म प्रत्येकको करने चाहिये और इस प्रकार स्वयका अपेक्षित विकास कर लेना चाहिये। एतदर्थ किसीका भी विरोध होना सम्भव नहीं।

स्पर्धा दूर करनी चाहिये।

एकका काम दूसरा न करे, इस प्रकारका सामान्य नियम होनेके कारण एकके कामके लिये दूसरेकी स्पर्धा नहीं हो सकती। समाजमें स्पर्धाको दूर करनेके लिये यह सर्वोत्तम साधन है। इसी प्रकार एकका काम दूसरा न करे, ऐसा निश्चित होनेके कारण यह भय ही नहीं रहेगा कि किसी एक काममें अधिक भर्ती हो जाय। इस प्रकार ये चारों विभाग आवश्यक ही हैं।

ज्ञान-प्रचार

ज्ञान-विज्ञानमें उन्नति करके उसका सार अन्य लोगोंको देनेवाले राष्ट्रके अन्दर होने ही चाहिये। जनतामें अध्यात्मकी भूख रहती है। इस भूखको मिटानेवाले लोग समाजमें रहने ही चाहिये। यदि वे न रहे तो आध्यात्मिक अराजकता उत्पन्न हो जावेगी और इस कारण इतना असंतोष फैल जायेगा कि वह अन्य किसी भी साधनद्वारा दूर नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकारकी यह ज्ञानी वर्गकी आवश्यकता भी राष्ट्रमें है।

संरक्षक वर्ग

जनताकी सब प्रकारसे रक्षा होनी अत्यन्त आवश्यक है। चोर, लुटेरे, गुन्डे और शत्रुओंका उपद्रव न होवे तथा सबका यथावत् संरक्षण हो और साथ ही राष्ट्रमें शान्ति हो एतदर्थ संरक्षणका कार्य करनेवाला एक वर्ग आवश्यक रहता ही है। इसी वर्गका दूसरा नाम क्षत्रिय है। इस वर्गका यह कर्तव्य हो जाता है कि अन्तर्व्यवस्था ठीक रखी जाय तथा बाहरके शत्रुओंसे जनताकी रक्षा हो। राष्ट्रीय रक्षाकी दृष्टिसे यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य अन्य वर्णसे होना सम्भव नहीं है और यदि अन्य वर्णोंका संरक्षण न हुआ तो उनका विकास भी नहीं हो सकता। इस प्रकार राष्ट्रमें क्षत्रियोंकी आवश्यकता अपेक्षित है।

ब्राह्मण एव क्षत्रिय वर्ण इस प्रकारसे राष्ट्रके लिये अत्यन्त उपयोगी है। ये दोनों वर्ण स्वयं अनुत्पादक हैं, किन्तु जो उत्पादक वर्ग हैं उन्हें इनकी अमूल्य सहायता प्राप्त होती रहती है। राष्ट्रमें ब्राह्मण थोडेसे होने चाहिये और क्षत्रिय राष्ट्रके विस्तारके अनुपातसे जितने अपेक्षित हों उतने होने ही चाहिये तथा इनका पोषण वैश्योंको करना चाहिये। क्योंकि ये ही वैश्योंके धनका संरक्षण किया करते हैं।

व्यापार--व्यवहार

ब्राह्मण ज्ञानार्जनमें तथा क्षत्रिय अन्तर्बाह्य संरक्षणके कार्यमें तत्पर रहेंगे, अत इनका द्वारा उत्पादनका कार्य विशेष होना सम्भव नहीं है। उत्पादनका यह कार्य करनेके लिये राष्ट्रमें शान्ति पूर्वक रहनेवाला वर्ग अपेक्षित है। इसे चाहिये कि यह खेतीबाडी करे, अन्न आदि उत्पन्न करे। धनधान्यद्वारा देशको समृद्ध किया जाय तथा व्यापार व्यवहार करके भी देशको सुसमृद्ध किया जाय। इन कार्योंके लिये स्थायी रूपसे घरमें रहनेवाला वर्ग चाहिये। इसी प्रकारका जो वर्ग रहता है उसे वैश्य कहा जाता है।

ब्राह्मण ज्ञानका उपदेश करता हुआ भ्रमण करता रहेगा अथवा घरपर आये हुए विद्यार्थीको विद्या पढाता रहेगा। क्षत्रिय और इस युद्धमें तो कभी इस उपद्रवको शान्त करनेके लिये उस प्रदेशमें घूमता ही रहेगा। अतः इनके लिये

एक स्थानपर बैठकर खेतीबाडी करना सम्भव नहीं है। अन्नकी आवश्यकता तो सभीको रहती है और वह बिना जमीनकी उत्तम सेवा किये पूरी नहीं हो सकती। जमीनकी उत्तम सेवा तभी हो सकती है जब कि एक स्थानपर निश्चित रहने वाला वर्ग हो। इसीलिये वर्णव्यवस्थामें इस वैश्य वर्णकी आवश्यकता प्रतिपादित की गई। इस वर्गके व्यवसायके कारण ही राष्ट्रमें स्थैर्य आता है।

शूद्र चौथा वर्ण है। इसमें एक तो कारीगरोंका समावेश होता है तथा दूसरे सेवकोंका समावेश होता है। यह वर्ग सभीके लिये बहुत उपयोगी है। शिल्पी लोग राष्ट्रको एक स्वरूप दिया करते हैं और सेवक सम्पूर्ण वर्णोंको आवश्यक सहायता दिया करता है।

पांचवा वर्ग वन्य जातियोंका है। इसका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह वनमें ही रहता है तथा वहींके साधनोंसे अपना योगक्षेम चलाता है।

उपर्युक्त पांचों वर्गोंको चाहिये कि वे '**स्वकर्मणा त मभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानव**' (गीता) के अनुसार अपने अपने कर्तव्योंसे तथा अपने अपने विशिष्ट कर्मोंसे राष्ट्र पुरुषकी सेवा करें। ऐसा करनेसे इन्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त हुआ करती है। इन चार वर्णोंके ये चार ही काम हैं, ऐसा नहीं, अपितु इनमेंसे प्रत्येक वर्णमें सैकडों उपभेद हैं और अनेक कार्योंका समावेश इनमें हुआ है। इन सबका प्रत्येकशः विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है, क्यों कि इसकी कल्पना सबके लिये स्पष्ट है। मूल बात तो यह है कि प्रत्येक वर्गको यह समझ कर कार्य करना है कि मैं राष्ट्र पुरुषकी सेवा करनेके लिये और अपने राष्ट्रकी प्रसन्नता बढानेके लिये अपना कर्तव्य कर रहा हूँ। सभीको चाहिये कि वे अपने इस कर्तव्यको जितनी उत्तमतासे कर सकें उतनी उत्तमतासे करें। प्रत्येकको यह समझ लेना चाहिये कि मैं यह कार्य अपने लाभके लिये न करके राष्ट्रकी प्रसन्नताके लिये राष्ट्र सेवाके रूपमें कर रहा हूं। क्योंकि राष्ट्रको सभीके कार्योंकी आवश्यकता है, अतः वे जितने उत्तम हों उतने उत्तम अपेक्षित हैं।

विद्यार्थियोंको पढाते समय शिक्षकोंको यह समझना चाहिये कि मैं राष्ट्र-सेवा कर रहा हूं, आरक्षकोंको अपने संरक्षणका कार्य करते समय यह समझना चाहिये कि मैं यह कार्य राष्ट्रके लिये कर रहा हूँ, व्यापारी अपना व्यापार राष्ट्र-सेवाके लिये करे, कारागीर और सेवकोंको चाहिये कि वे भी अपना कार्य राष्ट्र-सेवा समझकर करें। प्रत्येकको यह विचार करना चाहिये कि मेरे द्वारा राष्ट्रसेवा बराबर हो रही है या नहीं तथा किस प्रकारसे वह अधिक उत्तम हो सकती है। यदि प्रत्येकमें राष्ट्रपुरुषकी सेवाका उदात्त भाव उदित हो जाय तो सबकी सेवा द्वारा राष्ट्रमें निःसंदेह अपूर्व शान्ति स्थापित हो सकती है। मनुष्यके समस्त व्यवहारमें विश्वसेवाका भाव होना चाहिये और इसके द्वारा मेरा जीवन सफल होगा, ऐसा विश्वास भी होना चाहिये। इस प्रकारकी जागृति सबमें उत्पन्न हो, ऐसी शिक्षा सबको मिलनी चाहिये। जब ऐसा होगा तभी इस पृथ्वीपर स्वर्गोपम राज्य आरम्भ होगा। अगले लेखमें अनेक विध राज्य-शासनोंका विचार किया जाएगा।

सूर्य-नमस्कार

श्रीमान् कै. बालासाहब पंत प्रतिनिधि, B. A., राजासाहब, रियासत औंधने इस पुस्तकमें सूर्यनमस्कारका व्यायाम किस प्रकार लेना चाहिए, इससे कौनसे लाभ होते हैं और क्यों होते हैं; सूर्यनमस्कारका व्यायाम लेनेवालोंके अनुभव, सुयोग्य आहार किस प्रकार होना चाहिए; योग्य और आरोग्यवर्धक पाकपद्धति, सूर्यनमस्कारोंके व्यायामसे रोगोंको प्रतिबंध कैसा होता है, आदि बातोंका विस्तारसे विवेचन किया है। पृष्ठसंख्या १४०, मूल्य केवल १) और डाक-व्यय रु. ≈) १।≈) आनेके टिकट भेजकर मंगाइये। सूर्यनमस्कारोंका चित्रपट साइज १३''×१७'' इंच, मूल्य ≈) डा० व्य० ‒)

मंत्री—स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

गज और ग्राहका युद्ध

ले. श्री— गंगाप्रसाद

गज और ग्राहकी लड़ाई पुराणोंमें बहुत प्रसिद्ध है। बहुतसे हिन्दी भाषाके भजनोंमें भी उसका वर्णन आता है। पुराणोंकी बहुतसी कथाएं आलंकारिक होती हैं। कुछ ऐसी हैं जिनका आधार वेदोंमें पाया जाता है। उदाहरणके लिये गौतमकी स्त्री अहल्याके साथ इन्द्रके व्यभिचारकी कथा है जिसकी व्याख्या श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें की है।

(२) गज और ग्राहके युद्धका आधार वेदों या वैदिक साहित्यमें होनेकी मुझको कोई जानकारी नहीं। अच्छा है कि स्वाध्यायशील विद्वान् इस पर विचार करेंगे। परन्तु मेरी समझमें इस कथामें स्पष्ट अलंकार है जिसकी व्याख्या नीचे की जाती है।

(३) संसारकी समुद्रसे उपमा साधारण बोलचालमें भी की जाती है। संसार सागरसे पार करनेके लिये ईश्वरसे सहायता मांगनेके अनेक भजन हैं। ग्राह (वा मगर) समुद्रका एक भयंकर जन्तु है जो मनुष्यों तथा पशु आदि को पकड़कर निगल जाता है। ग्राह शब्दका अर्थ भी पकड़नेवाला है। गज या हाथी पृथिवी (या खुश्की) का सबसे बड़ा जन्तु है। उसका स्वर्गमें भी होना माना जाता है। इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी है। बौद्ध साहित्यमें हाथीका बहुत वर्णन है। हाथीके रूपमें ही बोधिसत्वकी आत्माका मायादेवीके गर्भमें जाना माना जाता है।

(४) गीताके १६ वें अध्यायमें दैवी संपत व आसुरी संपतका वर्णन है। महात्मा गान्धीने अपने गीता भाष्य में (जिसका नाम अनासक्ति योग है) महाभारतके संग्रामको भी मनुष्यकी दैवी प्रवृत्तियों और आसुरी प्रवृत्तियोंके युद्धका रूपक माना है। उसमें कृष्ण ईश्वर हैं, अर्जुन जीवात्मा है, पाण्डव दैवी प्रवृत्तियां और कौरव आसुरी प्रवृत्तियां हैं। कुरुक्षेत्र या धर्मक्षेत्र मानव शरीर है जिसमें यह आध्यात्मिक युद्ध सदा होता रहता है, ईश्वरकी सहायतासे दैवी प्रवृत्तियोंकी विजय होती है। वेदोंमें इन्द्र तथा वृत्रासुरका युद्ध और ब्राह्मणादि ग्रन्थों तथा पुराणोंमें ये देवासुर संग्राम भी उसी आध्यात्मिक युद्धका रूपक है।

(५) मेरी समझमें गज और ग्राहके युद्धमें भी वही आध्यात्मिक युद्ध अलंकार रूपसे वर्णन किया गया है। ग्राहरूपी सांसारिक पाप गजरूपी दैवी वासनाको पकड़ लेता है। ग्राह गजको पानीके भीतर खींचता है। जब गजकी सूंड़के ऊपर तक पानी आजाता है तब वह कृष्ण (परमेश्वर) को पुकारता है। विष्णु भगवान आते हैं और हाथसे खींचकर गजको ग्राहसे छुड़ाते हैं। भाव यही है कि मनुष्यके हृदयमें जब आध्यात्मिक युद्ध होता है और पापकी प्रवृत्तियां प्रबल होती हैं तो दैवी प्रवृत्तियोंकी ईश्वरको शरण चाहनेपर ईश्वर सहाय होते हैं और मनुष्यको पापसे छुड़ा देते हैं।

(६) गज और ग्राहका वास्तवमें युद्ध बहुत कम देखा या सुना गया है, यद्यपि ग्राहके द्वारा मनुष्य या साधारण पशुओंकी हत्या होती रहती हैं। गज पृथिवीपर सबसे बड़ा जन्तु है और उसका स्वर्गमें भी स्थान है। इसलिये आध्यात्मिक दृष्टिसे गज और ग्राहके युद्धका अधिक महत्व हो सकता है। मेरी समझमें इस युद्धमें यही अलंकार छिपा हुआ है।

(७) आर्य समाजके प्रसिद्ध कवि स्व० महता अमीचन्दके एक भजनका कुछ भाग जिसमें इस युद्धका वर्णन है। उदाहरणार्थ दिया जाता है—

नैया मोरी किस विध उतरे पार ?
गहरी नदिया नाव पुरानी नाविक है पतवार !
॥ हे नैया मोरी ॥
वार पार कोऊ घाट न सूझत आन पड़ी मझधार
॥ हे नैया मोरी ॥
गज और ग्राह लड़े जल भीतर गजने करी है पुकार
॥ हे नैया मोरी ॥
जिस भुजबलसे गज गह लीना सोई बांह पसार
हे नैया मोरी किस विध उतरे पार।

दिव्य जीवन

(श्री अरविन्द)

अध्याय १६

अतिमानसके तीन पद

(१) भूतभृत् (न च भूतस्थो) ममात्मा भूतभावनः । ..
अहमात्मा (गुडाकेश) सर्वभूताशयस्थित । गीता ९।५।१०।२०

मेरा आत्मा है वह जो सब प्राणियोंका भरण करता है और जो ही सब प्राणियोंका जीवन है।
मैं ही वह आत्मा हूं जो सब प्राणियोंमें बसा हुआ है।

(२) श्री रोचना दिव्या धारयन्त । ऋग्वेद २।२९।१

तीन ज्योति-शक्तियां तीन भास्वर दिव्य लोकोंको धारण किये हुए हैं।

प्रतिबोधात्मक ऋत्-चित् अपने जिस दृष्टिबिंदुसे हमारे इस जगत्को देखता है - और वैसे ही एक व्यष्टिगत आत्मा देखेगा जब कि वह मनकी सीमासे मुक्त होकर दिव्य अतिमानसकी क्रियामें भाग लेनेके लिये प्रविष्ट हो चुका होगा - उस दृष्टिबिंदुसे जगत्को समझना हमारे लिये अधिक सहज है। परंतु इस प्रकारसे जगत्को समझनेके पहले यह अच्छा होगा कि यहांपर हम कुछ देरके लिये रुक जांय और जो ईश्वर अपनी सत्ताके मूल एकाग्र एकत्व मेंसे अपनी मायाके द्वारा इस जगत्का विकास करता है उस ईश्वरकी चेतनाका अभीतक हमने जो कुछ अनुभव किया है या आगे चलकर कर सकेंगे उसकी चर्चाको संक्षेपमें फिरसे शुरू करें।

हम इस बातको मानकर आगे बढे हैं कि समस्त अस्तित्व एक सत्ता है, जिसका मूल स्वभाव चेतना है, वह एक चेतना है जिसका सक्रिय स्वभाव शक्ति या इच्छाशक्ति है और यह सत्ता आनंद है, यह चेतना आनद है, यह शक्ति या इच्छाशक्ति आनंद है। सत्ताका यह आनंद, चेतनाका यह आनंद, शक्ति या इच्छाशक्तिका यह आनंद सनातन और अविच्छेद्य है, फिर चाहे यह सत्ता आत्म-समाहृत हो और विश्रांतिकी स्थितिमें हो या सक्रिय और सृष्टिपरायण हो - यही है ईश्वर, यही हैं हम अपनी मूल और अजागतिक सत्तामें। आत्म-समाहृत स्थितिमें यह सत्ता मूल शाश्वत अविच्छिन्न आनंदको प्राप्त है या यों कहें कि यह स्वयं ही वह आनंद है, अपने सक्रिय और सृष्टि रूपमें यह अस्तित्वकी लीलाके आनदको, चेतनाकी लीलाके आनंदको, शक्ति और इच्छाशक्तिकी लीलाके आनंदको प्राप्त है या यों कहें कि यह स्वयं ही उन आनदोंका रूप धारण करती है। यह लीला ही विश्व है और यह आनद ही विश्व-जीवनका एक मात्र हेतु उद्देश्य और लक्ष्य है। भागवत चेतनामें यह लीला और आनद शाश्वत और अविच्छेद्य रूपसे वर्तमान हैं, हमारी मूल सत्ता, हमारा सत्य आत्मा भी, जो कि मिथ्या आत्मा या मानसिक अहंकारके द्वारा हमसे छिपा हुआ है, इस लीला और आनदको शाश्वत और अविच्छेद्य रूपसे भोगता है और चूंकि वह अपनी सत्तामें भागवत चेतनाके साथ एक है इसलिये वास्तवमें वह और कुछ कर ही नहीं सकता। अतएव यदि हम दिव्य चेतनाको प्राप्त होनेकी अभीप्सा करते हैं तो उसे हम और किसी प्रकारसे नहीं बल्कि अपने अंदर आवृत जो यह आत्मा है उसको अनावृत करनेके द्वारा, इस मिथ्या आत्मामें या मानसिक अहकारमें जो हमारी वर्तमान स्थिति है उसमेंसे निकलकर अपने सत्य आत्मामें जो एकत्व स्थिति है उसमें आरोहण करनेके द्वारा तथा भागवत चेतनाके साथ उस एकत्वमें प्रवेश करनेके द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं जिसमें हमारे अंदरकी कोई अतिचेतन वस्तु सदा रमण करती है - नहीं तो हमारा अस्तित्व ही नहीं हो सकता था - किंतु जिससे हमारा सचेतन मन वंचित है।

परंतु एक ओर तो सच्चिदानंदके इस एकत्वपर और दूसरी ओर इस विभाजित मनपर इस प्रकारसे जोर देनेका अर्थ होता है दो परस्पर-विरोधी तत्त्वोंकी प्रतिष्ठा करना, जिनमेंका एक तत्त्व यदि सत्य ठहरेगा तो दूसरा अवश्य ही मिथ्या साबित होगा और तब इनमेंके एक तत्त्वका यदि भोग करना हो तो दूसरेका त्याग करना ही होगा। लेकिन पृथिवीपर हम मनमें तथा मनके ही रूप जो हमारे प्राण और शरीर हैं उनमें ही रहते हैं और उस एक सत्-चित् आनंदको प्राप्त करनेके लिये मन, प्राण और शरीरकी चेतनाका त्याग करना यदि अनिवार्य हो तो फिर यहां इस पृथिवीपर दिव्य जीवनकी कोई संभावना ही नहीं रहेगी। इस विश्व-जीवनको माया जानकर सर्वथा त्याग देना होगा ताकि हम परात्पर पुरुषमें रमण कर सकें या उसके स्वरूपको पुन प्राप्त हो सकें। इस समाधानके सिवाय और कोई चारा ही नहीं रहेगा यदि इन दोनों तत्त्वोंको जोडनेवाली कोई बीचकी कडी न हो, जो इन दोनोंको एक दूसरेकी कैफियत दे सके और इनके बीच एक ऐसे संबधको स्थापित कर सके जिससे कि हमारे लिये यह संभव हो जाय कि हम उस एक सच्चिदानंदको मन, प्राण और शरीरके सांचेमें उपलब्ध कर सकें।

यह बीचकी कडी है। इसे हम अतिमानस या ऋत-चित् कहते हैं, क्योंकि यह तत्त्व मनसे श्रेष्ठ है और मनकी तरह वस्तुओंके बाह्य रूपोंमें और जागतिक विभाजनोंमें नहीं बल्कि उनके मूलगत सत्य और एकत्वमें रहता और कार्य करता है। हम जिस वस्तुस्थितिको मानकर आगे बढे हैं उसके अनुसार अतिमानसका अस्तित्व एक न्यायसंगत आवश्यकता है। क्योंकि अपने-आपमें तो सच्चिदानंद अवश्य ही चिन्मय अस्तित्व, जो कि आनंद है उसका एक देशहीन कालहीन परमपद ही है; परंतु यह जगत् देश-कालांतर्गत एक विस्तार है और कार्य कारणताके द्वारा संबधों और संभावनाओंकी एक गति, एक क्रिया, एक विकास है जैसा कि हमें प्रतीत होता है। इस कार्यकारणताका सच्चा नाम है भागवत विधान और इस विधानका सार है वस्तुओंके उस सत्यका अनिवार्य आत्म-विकास जो सत्य जो कुछ विकसित हो रहा है उसकी मूल सत्ताके अंदर ऋत-भरा-भावनाके रूपमें विद्यमान है। यह अनंत संभावनाके स्वयं द्रव्यमेंसे सापेक्ष शक्तियोंका पूर्वनिर्द्धारण है। समस्त वस्तुओंको जो इस प्रकारसे विकसित करती है वह अवश्य ही एक ज्ञानमय इच्छाशक्ति या चित्-शक्ति है, क्योंकि विश्वका सारा प्राकट्य उस चित्-शक्तिकी लीला है जो सत्का सार स्वभाव है। परंतु यह विकासात्मक ज्ञानमय इच्छाशक्ति मानसिक नहीं है, क्योंकि मन उस भागवत विधानको न तो जानता है न यह उसको प्राप्त है न उसपर इसका कोई शासन ही है, बल्कि यह स्वयं उस इच्छा-शक्तिके द्वारा शासित है, उसके परिणामोंमेंसे एक परिणाम है, मनकी गतिविधि सत्यके आत्म-विकासकी जागतिक घटनाओंमें ही है, इसके मूलतक वह नहीं जा सकता, इस विकासके परिणामोंको वह भिन्न भिन्न वस्तुओंके रूपमें देखता है और उनके उद्गम तथा सत्यतक पहुचनेकी व्यर्थ ही चेष्टा करता रहता है। इसके अतिरिक्त यह ज्ञानमय इच्छाशक्ति, जो सब कुछका विकास करती है, अवश्य ही वस्तुओंके एकत्वको प्राप्त है और उस एकत्वमेंसे ही उनके बहुत्वको प्रकट करती है, परंतु मन इस एकत्वको प्राप्त नहीं है, यह केवल बहुत्वके एक अंशको ही प्राप्त है और वह भी अपूर्ण रूपसे।

इसलिये मनसे श्रेष्ठ एक ऐसा तत्त्व होना ही चाहिये जो उन शर्तोंको पूरा करे जिन्हें मन नहीं कर सकता। निस्संदेह यह तत्त्व स्वयं सच्चिदानंद ही है, किंतु अपनी शुद्ध अनंत अचल चेतनामें जो सच्चिदानंद है यह वह नहीं है, बल्कि उस मूल स्थितिसे बाहर निकलकर, या यों कहें कि उस मूल स्थितिको आधार या क्षेत्र बनाकर एक ऐसी गतिमें आया हुआ सच्चिदानंद है जो उसकी अपनी क्रिया-शक्तिका रूप और विश्व-सृष्टिका साधन है। चित् और तपसक्ति सत्की विशुद्ध शक्तिके युगल और मूल पहलू हैं, इसलिये ज्ञान और इच्छाशक्ति अवश्य ही वे रूप हैं जिन्हें यह शक्ति काल और देशके विस्तारमें पारस्परिक संबधों-वाले जगत्की सृष्टि करनेके लिये धारण करती है। यह ज्ञान और यह इच्छाशक्ति अवश्य ही एक है, अनंत है, सब कुछका आलिंगन किये हुए है, सब कुछको प्राप्त है, सब कुछको आकार प्रदान करती है तथा गति और रूपमें जिसे उतार लाती है उसको अपने अंदर शाश्वत रूपसे धारण किये हुए हैं। अतिमानस, तब, एक सत्ता है जो अपने

अंदरसे निकलकर एक निर्देशक आत्म-ज्ञानमें आ जाती है तथा अपने-आपके किन्हीं सत्योंका दर्शन कर उन्हें अपने कालहीन देशहीन अस्तित्वके कालगत और देशगत विस्तारमें सिद्ध करनेका संकल्प करती है। उसकी अपनी सत्तामें जो कुछ है वही आत्म-ज्ञानका, ऋत-चित्का, ऋतंभरा-भावनाका रूप धारण करता है और यह आत्म-ज्ञान चूंकि आत्म-शक्ति भी है इसलिये यह अपने-आपको काल और देशमें अव्यर्थ रूपसे चरितार्थ क्या सिद्ध करता है।

यही, तब, भागवत चेतनाका स्वभाव है जो अपनी चित् शक्तिकी क्रियाके द्वारा अपने-आपके अंदर समस्त वस्तुओंकी सृष्टि करती और अस्तित्वके सत्यकी निगूढ़ ज्ञानमय इच्छा-शक्तिके द्वारा या वस्तुओंको जिसने बनाया है उस ऋतंभरा भावनाके द्वारा अपने आत्म-विवर्तनके जरिये उनके विकासका नियमन करती है। जो सत्ता इस प्रकार चिन्मय है उसे ही हम ईश्वर कहते हैं, और स्पष्ट ही वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है। सर्वव्यापी इसलिये कि नाम रूप मात्र उसकी चिन्मय सत्ताके नाम और रूप हैं जिन्हें देश और कालरूपी उसके अपने विस्तारमें उसकी अपनी गतिशील शक्तिने सृष्ट किया है, सर्वज्ञ इसलिये कि समस्त वस्तुएं उसकी चिन्मय सत्तामें अस्तित्व रखती, उसके द्वारा रूपायित होतीं और उसीके अधिकारमें रहती हैं; सर्व शक्तिमान इसलिये कि यह सर्वाधिकारी चेतना सर्वाधिकारी शक्ति और सर्व सृष्टिकारी इच्छाशक्ति भी है। और यह इच्छाशक्ति और ज्ञान जैसे कि हमारे ज्ञान और इच्छाशक्ति एक दूसरेसे लड़ने लगते हैं वैसे एक दूसरेका विरोध नहीं करते; क्योंकि ये पृथक् नहीं है बल्कि उसी एक ही सत्ताकी एक गति हैं। न अंदर या बाहरसे कोई दूसरी इच्छा, शक्ति या चेतना इनका विरोध ही कर सकती है क्योंकि एकमेवाद्वितीयके लिये कोई भी चेतना या शक्ति बाह्य नहीं है, और समस्त क्रियाशक्तियां तथा ज्ञानके आंतर रूपायन इस एकमेवाद्वितीयके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं, बल्कि वे एक निर्देशक इच्छाशक्तिकी तथा एक सर्व सामंजस्यकारी ज्ञानकी लीला मात्र हैं। व्यष्टिगत और विभक्त वस्तुओंमें रहनेके कारण तथा समग्रताको देख नहीं सकनेके कारण हम जिसे इच्छाओं और शक्तियोंके संघर्षके रूपमें देखते हैं उसे अतिमानस अपने अंदर नित्य वर्तमान पूर्वनिर्दिष्ट सामंजस्यके परस्पर सहायक तत्वोंके रूपमें देखता है, क्योंकि वस्तुओंकी समग्रता सदा ही उसकी दृष्टिके अंतर्गत रहती है।

भागवत चेतनाका कर्म किसी भी पद या रूपको क्यों न ग्रहण करे पर इस चेतनाका यही स्वभाव सदा रहेगा। परंतु इसका अस्तित्व अपने-आपमें पूर्ण और परम होनेके कारण इसके अस्तित्वकी शक्ति भी अपने विस्तारमें पूर्ण और परम ही है और इसलिये वह अपने कर्मके किसी एक पद या किसी एक रूपमें सीमित नहीं है। हम मानवप्राणी जागतिक रूपसे चेतनाके एक विशिष्ट रूप हैं और काल और देशके अधीन हैं तथा अपनी बाह्य चेतनामें, -जिसको हम अपनी सारी सत्ता जानते हैं, हम एक कालमें एक ही वस्तु, एक ही रूप, सत्ताका एक ही पद, अनुभवोंका एक ही समूह हो सकते हैं, और वह एक वस्तु ही हमारे लिये हमारे अपने आपका सत्य है, केवल जिसे ही हम स्वीकार करते हैं; बाकीका सभी कुछ या तो हमारे लिये सत्य नहीं है या हमारी दृष्टिके ओझल होकर भूतकालमें लुप्त हो जानेके कारण हमारे लिये अब सत्य नहीं रहा है या भविष्यके गर्भमें होने और हमारे दृष्टि क्षेत्रके अंदर नहीं आनेके कारण हमारे लिये अभीतक सत्य नहीं हुआ है। परंतु भागवत चेतना इतनी व्यष्टिगत, इतनी सीमित नहीं है, वह एक कालमें बहुतेरी वस्तुएं बन सकती है और सदाके लिये भी एकसे अधिक स्थायी पदोंको ग्रहण कर सकती है। स्वयं अतिमानस तत्वमें ही हम यह पाते हैं कि उसकी जगत्-निर्मात्री चेतनाके ऐसे तीन साधारण पद हैं। पहला पद वस्तुओंके अविच्छेद्य एकत्वकी स्थापना करता है, दूसरा उस एकत्वमें इतनासा परिवर्तन करता है जिससे एकमें बहुके और बहुमें एकके प्राकट्यको सहारा मिले, तीसरा उसमें इतनासा और परिवर्तन भी करता है जिससे कि बहुमुखी व्यक्तित्वके विकासको प्रश्रय मिले। यह बहुमुखी व्यक्तित्व ही अज्ञानके कर्मके द्वारा चेतनाके निम्नतर स्तरमें हमारे अंदर एक पृथक् अहंकारके भ्रमका रूप धारण करता है।

वस्तुओंके अविच्छेद्य एकत्वकी जिसने स्थापना की है अतिमानसके उस प्रथम पदका स्वभाव क्या है यह हमने जान लिया है। यह विशुद्ध एकत्वमयी चेतना नहीं है, क्योंकि वह तो सच्चिदानंदकी अपने आपके अंदर कालहीन और देशहीन एकाग्रता है, जिसमें चित्-शक्तिका कोई आत्म-

प्रसरण नहीं हुआ है और यदि वह विश्वको धारण करती भी हो तो उसे एक शाश्वत सम्भावनाके रूपमें ही धारण करती है न कि कालगत वास्तविकताके रूपमें। परंतु हम जिस पदकी चर्चा कर रहे हैं वह पद, इसके विपरीत, सच्चिदानंदका वह आत्म-विस्तार है जो सर्वाधार है, सर्वाधिकारी है, सर्वमय है। परंतु यह सर्व एक है, बहु नहीं; यहां किसी व्यक्तित्वकी सृष्टि नहीं हुई है। जब हमारी शांत और शुद्ध मानस सत्तापर इस अतिमानसका प्रतिबिंब पडता है तब हमें अपने व्यक्तित्वका कोई भान नहीं रहता, क्योंकि वहां जो चेतनाकी एकाग्रता है वह किसी व्यक्तिगत विकासको सहारा देनेके लिये नहीं है। वहां सब कुछ एकत्वमें और एककी तरह विकसित होता है; यह भागवत चेतना सब कुछको किसी पृथक् अस्तित्वकी तरह नहीं, बल्कि अपने निजी अस्तित्वके रूपोंकी तरह धारण किये रहती है। जिस प्रकार हमारे मनमें उठनेवाले विचार और आकृतियां हमारे लिये पृथक् अस्तित्व नहीं रखते, बल्कि हमारी अपनी चेतनाके ग्रहण किये हुए रूप ही हैं, उसी प्रकार समस्त नाम और रूप अतिमानसके प्रथम पदके आगे उसकी अपनी चेतनाके द्वारा ग्रहण किये हुए नाम और रूप ही हैं। अनंतके अदर यह है शुद्ध और दिव्य विभावन (Ideation) और रूपायन वह विभावन और रूपायन जो मानसिक विचारकी मिथ्या क्रीडाकी तरह नहीं, बल्कि चिन्मय सत्ताकी वास्तविक लीलाकी तरह संगठित हुआ है। इस पदमें स्थित दिव्य आत्मा, चित्-सत्ता और शक्ति-सत्तामें कोई भी भेद नहीं करता, क्योंकि समस्त शक्ति चित्की क्रिया ही तो है, न वह जडतत्व और आत्मामें ही कोई भेद करता है, क्योंकि समस्त रूप आत्माके रूप ही हैं।

अतिमानसके दूसरे पदमें भागवत चेतना जिस गतिको धारण करती है उससे अपनी भावनामें अलग हो जाती है और एक प्रकारकी प्रतिबोधक चेतनाके द्वारा उस गतिका अनुभव करती, उसका अनुसरण करती, उसके कर्मोंको अपने अधिकारमें करती और उनमें निवास करती तथा उस गतिके रूपोंमें अपने आपको बांटती हुईसी दिखाई देती है। प्रत्येक नाम और रूपमें यह अपने-आपको स्थाणु चिन्मय आत्माके रूपमें अनुभव करती है जो कि सब किसीमें एक ही है, परंतु यह अपने-आपको चिन्मय आत्माकी एक केंद्रीभूत चेतनाके रूपमें भी अनुभव करती है जो गतिकी व्यष्टिगत लीलाका अनुसरण करती और उसको प्रश्रय देती है और गतिकी अन्य लीलासे उसके पार्थक्यको बनाये रहती है— आत्म-सारमें यह सर्वत्र एक ही है, किन्तु आत्म-रूपमें विभिन्न हो जाता है। आत्म रूपको प्रश्रय देनेवाली यह केंद्रीभूत चेतना ही व्यष्टिगत भगवान् या जीवात्मा है जो सार्वत्रिक भगवान् या सर्वरूप आत्मासे पृथक् है। इनमें कोई मूलगत भेद नहीं है, तब लीलाके लिये एक व्यावहारिक भेद हो जाता है जो वास्तविक एकत्वको रद नहीं करता। सार्वत्रिक भगवान् आत्माके समस्त रूपोंको अपना-आप जानता है, फिर भी प्रत्येकके साथ पृथक् पृथक् तथा प्रत्येकमें दूसरे सभी रूपोंके साथ संबंध स्थापित करता है। व्यष्टिगत भगवान् अपने अस्तित्वको एकमेवाद्वितीयके एक आत्म-रूप और एक आत्म-गतिकी तरह देखता है और जब कि चेतनाकी सर्वाधार क्रियाके द्वारा वह एकमेवाद्वितीयके साथ तथा उसके समस्त आत्म-रूपोंके साथ एकत्वमें रमता है तब भी वह एक पुरोगामी या अग्रवर्ती प्रतिबोधक क्रियाके द्वारा अपनी व्यष्टिगत गतिको तथा एकमेवाद्वितीय और उसके समस्त रूपोंके साथ उसका जो एकत्व है उसके अदर एक स्वच्छंद पार्थक्यजनित संबंधोंको प्रश्रय देता और उनमें रमण करता है। यदि हमारा पवित्रीकृत मन अतिमानसके इस द्वितीय पदको प्रतिबिंबित करे तो हमारा अतरात्मा अपने व्यष्टिगत जीवनको सहारा देते हुए और धारण करते हुए भी वहां अपने-आपको वह एकमेवाद्वितीय ही जानेगा जो ही सर्व हुआ है, सर्वांतर्यामी है, सर्वाधार है और अपने इस विशिष्ट परिवर्तनमें भी ईश्वरके साथ तथा अपने अन्यान्य आत्माओंके साथ अपने एकत्वका भाग करेगा। विज्ञानमय जीवन-की किसी भी अन्य अवस्थामें और कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता; जो कुछ परिवर्तन होता है वह है अपने बहुत्व-को अभिव्यक्त करनेवाले एकके साथ उस बहुकी लीला जो एक ही है तथा वैसा हेर-फेर होता रहता है जो कि इस लीलाको बनाये रखने और इसका परिचालन करनेके लिये आवश्यक है।

अतिमानसका तीसरा पद तब होता है जब गतिको प्रश्रय देनेवाली केंद्रीभूत चेतना अब उससे अलग नहीं रहती और किसी विशिष्ट अहंताके भावके साथ उसमें निवास और इस प्रकार उसका अनुगमन और भोग नहीं

करती, बल्कि अपने-आपको उसमें प्रक्षिप्त कर देती है तथा एक प्रकारसे उसके अंदर निर्वासित हो जाती है। यहां लीलाका स्वभाव बदल जाता है, किंतु इतनासा ही कि व्यष्टिगत भगवान् सार्वत्रिक भगवान्के साथ तथा अपने अन्यान्य रूपोंके साथ अपने संबंधोंकी लीलाको इतना प्रमुख स्थान दे देता है कि वही उसकी, चेतनाके अनुभवोंका व्यावहारिक क्षेत्र बन जाती है और इसका फल यह होता है कि उनके साथ एकत्व तो केवल समस्त अनुभवोंका एक परम सहगामी अनुभव तथा अमुक अंतिम अनुभवमात्र ही रह जाता है, पर उच्चतर पदमें एकत्व ही प्रमुख और मूलगत अनुभव रहता है और वैचित्र्य तो एकत्वका एक खेलमात्र ही होता है। इसलिये यह तृतीय पद व्यष्टिगत भगवान् और उसका मूल, अर्थात् सार्वत्रिक भगवानके बीच अद्वैतके अदर एक प्रकारका मूलगत आनदमय द्वैत भाव है—अवश्य ही यह एकत्व द्वितीय पदके एकत्वकी तरह गौण द्वैतभावके रंगमें रगा हुआ नहीं है—और इस प्रकारके द्वैत भावको बनाये रखने और इसके कार्य करनेके फलस्वरूप जो अवश्यंभावी परिणाम हैं वे होते ही हैं।

यह कहा जा सकता है कि इसका पहला परिणाम होगा उस अविद्याके अज्ञानमें जा गिरना जो बहुको अस्तित्वका वास्तविक तथ्य मानता है और एकको बहुका केवल एक विराट् समूह ही जानता है। परंतु वहां इस प्रकारका कोई पतन नहीं हो सकता। क्योंकि व्यष्टिगत भगवान् अभी भी यह जानता है कि वह एकमेवाद्वितीय और उसकी चिन्मय सृष्टि-शक्तिका ही परिणाम है, अर्थात् एकमेवाद्वितीयके उस अनेक आत्मकेंद्रीकरणका परिणाम है जिसके द्वारा वह काल और देशके विस्तारमें अपने बहुमुखी अस्तित्वका अनेक प्रकारसे शासन और भोग करता है; सच्चा व्यष्टि-आत्मा अपने किसी स्वतंत्र या पृथक् अस्तित्वका मिथ्याभिमान नहीं करता। वह केवल स्थाणु एकत्वके सत्यके साथ-साथ भेदात्मक गतिके सत्यको सिद्ध भर करेगा, यह मानता हुआ कि ये एक ही सत्यके उच्चतर और निम्नतर ध्रुव, एक ही भागवत लीलाके आरंभ और अंत हैं; और वह एकत्वके आनंदकी पूर्णताके लिये भेदके आनंदपर भी आग्रह करेगा।

स्पष्ट ही ये तीन पद उस एक ही सत्यके साथ बरताव करनेके तीन अलग-अलग तरीके हैं, अस्तित्वके जिस सत्यका उपभोग किया जाता है वह वही रहता है, तब उसको भोग करनेकी रीति या यों कहें कि उसको भोगनेवाले आत्माका पद भिन्न हो जाता है। यहां आनदका रूप बदल जाता है, किंतु वह ऋत्-चित्की मर्यादाके अतर्गत ही रहता है और इस परिवर्तनके कारण आत्माका मिथ्यात्व या अज्ञानमें पतन नहीं होता। क्योंकि अतिमानसका द्वितीय या तृतीय पद जिस वस्तुको प्रथम पदने भागवत एकत्वमें धारण कर रखा था उसका भागवत बहुत्वके रूपोंमें केवल विकास और प्रयोगभर करता है। इन तीनों पदोंमेंसे किसीपर भी हम मिथ्यात्व और भ्रांतिकी छाप नहीं लगा सकते। उच्चतर अनुभवके सत्यके परम प्राचीन प्रमाण जो उपनिषद् हैं उनकी भाषा आत्म-प्रकटनशील भागवत जीवनके बारेके इन सब अनुभवोंकी पुष्टि करती है। हम केवल यही कह सकते हैं कि एकत्व बहुत्वके पहलेसे अस्तित्व रखता है, किंतु यह पूर्ववर्तिता कालगत नहीं बल्कि चेतनाके संबंधगत है और परम आध्यात्मिक अनुभव कोई भी वर्णन, कोई भी वेदांतिक दर्शन इस बातसे इनकार नहीं करता कि एक बहुके पहलेसे है और यह कि बहु सदासे एकपर निर्भर करता है। चूंकि बहु कालके अंदर शाश्वत प्रतीत नहीं होता बल्कि एकसे अभिव्यक्त होकर अपने सारस्वरूप एकमें ही लौट जाता है इसलिये उसकी सत्यतासे इनकार किया जाता है, परंतु उतनी ही युक्तिके साथ यह भी कहा जा सकता है कि कालके अदर सृष्टिका सदा बने रहना या यों कहें कि उसका नित्य पुनरावर्तन होना इस बातका सबूत है कि दिव्य बहुत्व कालातीत परमात्माका उतना ही चिरतन तथ्य है जितना कि दिव्य एकत्व, अन्यथा सृष्टिका स्वभाव कालके अदर अपरिहार्य रूपसे नित्य पुनरावर्तित होनेका न होता।

हमारा मानव-मन जब आध्यात्मिक अनुभवके किसी एक पार्श्वपर ही आत्यंतिक रूपसे जोर देने लगता, उसीको एकमात्र शाश्वत सत्य कहता और उसका वर्णन सब कुछको पृथक्-पृथक् करनेवाले हमारे मानसिक तर्कको भाषामें करने लगता है केवल तभी परस्पर-विनाशक दर्शनशास्त्रोंका जन्म होता है। इस प्रकार, एकत्वमयी चेतनाके एकमात्र सत्यपर अत्यधिक जोर देकर हम अद्वैतकी लीलाको मनके

सुझानेसे यथार्थतः भेदमूलक मान लेते हैं, पर किसी उच्चतर तत्त्वके सत्यके द्वारा मनकी इस भूलको सुधारनेका प्रयास तो नहीं करते किंतु यह प्रतिपादन करने लगते हैं कि यह लीला मिथ्या है, माया है। अथवा बहुमें एकको लीलापर अत्यधिक जोर देकर हम किसी विशिष्ट अद्वैतकी घोषणा करते और व्यष्टिगत आत्माको परमात्माका एक आंश-रूप मानते हैं, किंतु तब हम यह विशिष्टाद्वैतमय जीवन सनातन है ऐसा प्रतिपादन करते हुए एक अमर्यादित एकत्वके अंदर किसी विशुद्ध चेतनाके अनुभवको सर्वथा अस्वीकार करते हैं। या फिर, पार्थक्यकी लीलापर अत्यधिक जोर देकर हम यह प्रतिपादित करते हैं कि परमात्मा और मानव-आत्मा शाश्वत रूपसे भिन्न हैं और उस अनुभवको प्रामाणिकताको अग्राह्य करते हैं जो इस पार्थक्यके अनुभवका अतिक्रमण करता और इस भेदको मिटाता हुआसा प्रतीत होता है। परंतु हमने जिस दृष्टिबिंदुको अब दृढतापूर्वक अपनाया है वह इन नकारों और बहिष्कारोंकी आवश्यकतासे हमें बचाता है; हमें यह दिखाई देता है कि इन समस्त भावात्मक अनुभवोंके प्रतिपादनोंके पीछे एक सत्य है, किंतु साथ ही साथ हम यह भी देख पाते हैं कि इन प्रतिपादनोंमें एक अतिमात्रा समा गयी है जिसके फल ये निस्सार नकार हैं। परंतु हमने जब उस तत्त्वकी परम निरपेक्षताको स्वीकार कर लिया है जो एकत्व या-बहुत्व संबधी हमारे मानसिक विचारोंसे सीमित नहीं है, और फिर हमने जब यह स्वीकार कर लिया है कि एकत्व ही बहुत्वके प्राकट्यका आधार है तथा बहुत्व ही एकत्वमें वापस लौटने और भागवत प्राकट्यमें एकत्वको भोगनेका आधार है तब हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम अपने वर्तमान वर्णनपर इन वादविवादोंके बोझको लादें या भागवत अनतत्त्वके परम स्वातंत्र्यको अपने मानसिक भेद और निर्वचनोंके अधीन करने जैसे व्यर्थके परिश्रममें पड़ें।

' प्रार्थना '

बटाला (पू० पंजाब)

(दैनिक प्रार्थना सभा बटालाका धार्मिक हिन्दी मासिक)

सम्पादक— बाबा खुशीराम बेदी, आयुर्वेदाचार्य, निशिकान्त

वार्षिक-शुल्क— मनिआर्डरसे- २) रु

वी पी से- २॥) रु.

इस पत्रिकामें बड़े बड़े सन्तों और सत्पुरुषोंके सदाचार, भक्ति तथा ज्ञान सम्बन्धि लेख वा कविताएं निकलती रहती हैं। इस भौतिकवादके युगमें चहुं ओरसे निराश और अशान्त मानवको ऐसे लेखों वा सत्साहित्यसे शान्ति वा सुख लाभ होनेकी पूर्ण आशा है। निर्धन जनताका ध्यान रखते हुए चन्दा केवल नाममात्र ही रखा गया है। आशा है भगवत्प्रेमी सज्जन इससे लाभ उठायेंगे और ग्राहक बनकर हमारा सहयोग देंगे।

सम्पादक

ऐक्यवादी--दयानन्द

अ र्था त्

आर्यसाहित्यमें क्रान्ति करनेवाली नई खोज

(लेखक— श्री नाथूलाल आर्य, वानप्रस्थी वैदिक धर्म विशारद, शिवपुरी म भा)

अतिरिक्त--प्रमाण.

श्रद्धेय प० श्रीपाद दामोदरजी सातवलेकर सपादक 'वैदिक धर्म' ने साप्ताहिक "आर्य" १५ कार्तिक २००१ में कथन किया है कि "प्रथमतः मैंने सब मन्त्रोंको त्रैतवाद परक लगानेका बडा प्रयत्न किया, परतु जैसा जैसा अध्ययन अधिक हुवा वैसा वैसा मुझे त्रैतवाद छोडकर वेदका सदैक्य वाद सिद्धान्त मानना पडा। अर्थात् वेदमंत्र ही मुझसे त्रैतवादको छुडवाने और सदैक्य सिद्धान्तका ग्रहण करवाने के लिये कारण हुवे हैं अतः मैं यह कहता हूं कि जो विद्वान वेदोंका अध्ययन करता जायगा, वह सदैक्य सिद्धान्तका ग्रहण अवश्य करेगा।" इसके पश्चात् उन्होंने वेदादि अनेक प्रमाणोंद्वारा कथन किया कि "पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्चभव्य' (ऋ० १०।९०।१ यजु ३१।२) 'इद सर्वं' में सब जीव आगये, सब जड पदार्थ भी आ गये, जो है वह सब इसमें आ गया है। यह सब पुरुष परमात्माका रूप है। अब निम्नलिखित वचनोंको भी लीजिये।

"पुरुष एवेदं सर्वं" (ऋ १०।९०।२ व. यजु. ३१।२)

"वासुदेव सर्वं" (गीता ७।१९)

"आत्मा व इदं सर्वं" (छा. ७।२५।२)

"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म" (मु ३ २)

इस तरह अनेक वचन है। पुरुष, वासुदेव, आत्मा, ब्रह्म, परमेश्वर आदि पदोंसे जिस एक परतत्वका बोध होता है, वह इस विश्व रूपसे हमारे सामने उपस्थित है। उक्त सब वचनोंसे यही सिद्ध हो रहा है।

(१) पुरमें सदा बसनेवाला, पुरसे कभी पृथक् न होनेवाला मिश्री और मिठासकी तरह, पुरुष है।

(२) पुर और पुरमें बसनेवालेका भेद, (मिश्री और मिठासके भेदकी तरह।) काल्पनिक है वास्तविक नहीं जिससे वेदका वास्तविक सिद्धान्त सदैक्यवाद ही है।

इसके पश्चात् मैंने श्री प युधिष्ठिरजी मीमासकका लिखा हुवा ऋषि दयानंदके ग्रथोंका इतिहास देखा तो उसके पृष्ठ ७७ पर लिखा हुवा मिला कि "ऋषि दयानदके सवत १९३६ से पूर्वके किसी ग्रंथमें मुक्तिकी सान्तताका स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता अतः इससे पूर्व वह मुक्तिको अनन्त मानते थे।"

यद्यपि उपरोक्त इतिहासको पढनेसे पूर्वमें लगभग तीस वर्षसे त्रैतवाद सिद्धान्तको मानता था और उपरोक्त सातवलेकरजीके कथनानुसार प्रत्येक प्रकरणको त्रैतवाद परक लगानेका प्रयत्न करता था। किन्तु उपरोक्त इतिहासमें महर्षिके लिखे हुवे संवत १९३६ तकके सपूर्ण ग्रथोंमें मुक्तिकी अनतता होनेका सैद्धान्तिक विरोधाभास उत्पन्न होनेके कारण मैंने महर्षि दयानदके ग्रथोंको गंभीरतापूर्वक अध्ययन करना शुरू किया तो विदित हुआ कि उपरोक्त इतिहासके कथनानुसार महर्षि दयानदने संवत १९३६ तक अपने सपूर्ण ग्रथ, व्याख्यान व आत्मकथा (जीवन चरित्र) और शास्त्रार्थ आदि जो प्रकाशित किये हैं उन सबमें मुक्तिको अनन्त होना कथन किया है जो "वैदिक धर्म" अंक १० व ११ में विवरण सहित बताया जा चुका है जिससे महर्षि दयानदका ऐक्यवादी होना सिद्ध है। इतना ही नहीं बल्कि महर्षिके ग्रंथोंका जैसा जैसा अध्ययन अधिक किया वैसा वैसा मुझे त्रैतवाद छोडकर वेदोक्त तथा महर्षि कथित ऐक्यवाद माननेको बाध्य होना पडा अर्थात् महर्षिकृत ग्रथ ही मुझसे त्रैतवादको छुडवाने और ऐक्यवाद

सिद्धान्तका ग्रहण करवानेके लिये कारण हुवे हैं। अतः श्रद्धेय सातवलेकरजीके कथनानुसारमें भी पाठकोंसे प्रार्थना करता हू कि जो विद्वान महर्षि दयानदके ग्रथोंका गभीरतापूर्वक आद्योपांत अध्ययन करते जायगे वह ऐक्यवाद सिद्धान्तको ग्रहण अवश्य करेंगे। अतः महर्षिकृत ग्रथोंके अध्ययनसे, पूर्वमें जो ऐक्यवादी प्रमाण प्रकाशित किये हैं उनसे अतिरिक्त जो प्रमाण और मिले हैं वह पाठकोंकी सेवामें प्रेषित हैं।

(१७) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७॥

भाष्यम्

(अद्भ्यः संभृतं०) तेन पुरुषेण पृथिव्यै पृथिव्युत्पत्त्यर्थमद्भ्योरसः संभृत संगृह्यतेन पृथिवी रचिता। एवमग्निरसेनाग्नेः सकाशादापः उत्पादिताः अग्निश्च वायोः सकाशाद्वायुराकाशादुत्पादित, आकाशः प्रकृते, प्रकृतिः स्वसामर्थ्याच्च। विश्वं सर्वं कर्म क्रियमाणस्य स विश्वकर्मा।

भापार्थ

(अद्भ्यः संभृत) उस परमेश्वर पुरुषने पृथिवीकी उत्पत्तिके लिये जलसे सारांश रसको ग्रहण करके पृथिवी और अग्निके परमाणुओंको मिलाके जल रचा है। इसी प्रकार वायुके परमाणुओंसे अग्निको और आकाशसे वायुको रचा है। वैसे ही आकाशको प्रकृतिसे और प्रकृतिको स्वसामर्थ्यसे रचा है। जो कि सब तत्वोंके ठहरनेका स्थान है। अत. ईश्वरने प्रकृतिसे लेके घास पर्यंत जगतको रचा है। इससे सब पदार्थ ईश्वरके रचे होनेसे उसका नाम विश्वकर्मा है।

उपरोक्त पुरुष सूक्त मंत्र १७ जो चारों वेदोंमें विख्यात है। उसके संस्कृत व भाषाभाष्यमें महर्षि दयानदने स्पष्टरूपसे लिखा है कि इस परमेश्वर पुरुषने प्रकृतिको स्वसामर्थ्यसे उत्पन्न किया है इसलिये ये सब पदार्थ परमेश्वरके रचे हुवे होनेसे ही उसका नाम विश्वकर्मा है। (तन्मर्त्यस्य) तथो परमेश्वरने मरणधर्मा मनुष्यादि जीवोंको भी रचा है। इस कथनसे स्पष्टतः सिद्ध है, कि महर्षिने उपरोक्त प्रख्यात वेद मंत्रके भाष्यमें प्रकृति आदि संपूर्ण जगतको परमेश्वरकी स्वसामर्थ्यसे उत्पन्न होना कथन किया है। जिससे त्रैतवादका खंडन करके स्पष्टरूपसे ऐक्यवादका मंडन किया है और जो महानुभाव भ्रमवश परमेश्वरकी सामर्थ्यको ही प्रकृति बताते हैं उनके भ्रमका भी इसमें पृथकता बताकर निराकरण कर दिया गया है।

१८- ऋग्वेदका प्रथम सूक्त।

महर्षि दयानंदने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रकाशित करनेके पश्चात् वेदभाष्यके नमूनेके रूपमें ऋग्वेदके प्रथम सूक्तकी संस्कृत एवं आर्यभाषामें विस्तृत व्याख्या प्रकाशित की है, प्रथम मंत्रकी व्याख्यामें (यज्ञस्य देवम्) के संस्कृत व भाषा पदार्थमें लिखा है कि "परमेश्वरके सामर्थ्यसे सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणोंकी जो एक अवस्थारूप कार्य उत्पन्न हुवा है, जिसका प्रकृति, अव्यक्त और अव्याकृतादि नामोंसे वेदादि शास्त्रोंमें कथन किया है, उससे लेके पृथिवी पर्यन्त कार्य कारण संगतिसे जो जगत उत्पन्न होता है। जो जगतरूप यज्ञ है। अत इस भाष्यमें भी महर्षिने परमेश्वरके सामर्थ्यसे ही त्रिगुणात्मक कार्यरूप प्रकृतिका उत्पन्न होना कथन करते हुवे अव्यक्त व अव्याकृतादि नाम पर्यायवाची बताये हैं। जिससे त्रैतवादकी नित्यताका स्पष्टरूपसे खंडन होते हुवे ऐक्यवादका मंडन होता है। किन्तु फिर भी रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी वेद तथा महर्षिके उपरोक्त कथनके विरुद्ध त्रैतवादको ही नित्य मानते हैं। जिसके कारण वेदोक्त धर्मानुयाइयों द्वारा ही वेदोक्त सिद्धान्तकी अन्त्येष्टि होती जा रही है। जो पाठकोंके विचारणीय है।

१९- सत्यार्थ प्रकाश

महर्षि दयानंदने वर्तमान सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास, ईश्वर वेद विषयके आरंभमें तेतीस देवकी व्याख्या करते हुवे शतपथका प्रमाण देकर जीवात्माको निम्न प्रकार भौतिक पदार्थोंमें होना लिखा है। "त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता०" इत्यादि वेदोंमें प्रमाण है। इसकी व्याख्या शतपथमें की है कि तेतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चंद्रमा, सूर्य और नक्षत्र ये आठ वसु, प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र संवत्सरके बारह महिनेके बारह

आदित्य। बिजली यज्ञ ये तेतीस देव कहाते हैं और ईश्वर उपदेश करता है कि मैं (ईश्वर) सबके पूर्व विद्यमान सब जगतका पति हूं। वर्तमान सत्यार्थ प्रकाशके इस कथनमें भी महर्षि दयानन्दने उपरोक्त वेदके कथनानुसार जीवात्माकी गणना भौतिक पदार्थोंमें करते हुवे ईश्वरको सब पदार्थोंके पूर्व वर्तमान होना बताकर त्रैतवादका खंडन व ऐक्यवादका मंडन स्पष्ट रूपसे किया है। किंतु फिर भी रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी महर्षिके उपरोक्त कथनके विरुद्ध परमात्माको अपनेसे पूर्व विद्यमान होना न मानते हुवे उसको अपना समकालीन बताकर त्रैतवादको ही नित्य मानते हैं। जिसके कारण महर्षि दयानन्दके शिष्योंद्वारा ही महर्षिके सिद्धान्तका खंडन होता जा रहा है जो पाठकोंके विचारणीय है।

२० स्वमंतव्यामन्तव्य।

महर्षि दयानंदने सपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित करनेके पश्चात स्वमंतव्यामतव्य नामक पुस्तक लिखी जो उनके निधनके पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश दूसरे संस्करणके साथ प्रकाशित हुवी है। इसके मतव्य ११ "बंध" की व्याख्यामें लिखा है कि "बन्ध" सनिमित्तिक अर्थात् अविद्या निमित्तसे है। जो जो पाप कर्म-ईश्वर भिन्नोपासना, अज्ञानादि सब दुःख फल करनेवाले हैं। इसलिये यह "बंध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पडता है॥

महर्षिने उपरोक्त मंतव्यमें "बन्ध" को नैमित्तिक लिखकर त्रैतवादका खडन करते हुवे अपनी ऐक्यवादिताका स्पष्टरूपसे प्रतिपादन कर दिया है। जो पदार्थ नैमित्तिक होता है वह वास्तविक तौरपर न होनेके कारण अनित्य होता है इसलिये अविद्या नष्ट होनेपर बन्ध नष्ट हो जावेगा तब ज्ञान होकर मुक्ति होनेपर पुन. बन्ध होना असभव है। किंतु इस समयके रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी "बन्ध" को महर्षि दयानदके मंतव्यके विरुद्ध नैमित्तिक न मानते हुवे वास्तविक रूपसे मानकर मुक्त जीवोंको पुनः बंधमें आनेके त्रैतवाद सिद्धान्तका ही समर्थन करते हैं। जो पाठकोंके विचारणीय है।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त मतव्यमें महर्षिने ईश्वर भिन्नोपासना व अज्ञानादिको पापकर्म बताकर दुःखफलका देनेवाला कथन किया है किंतु इस समयके रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी उपरोक्त मतव्यके विरुद्ध ईश्वरको अपनेसे भिन्न मानकर उपासना करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। मेरी अल्पमतिसे इसी अज्ञानताके पाप कर्मके कारण आर्यसमाजके पतनका दुःख बिना इच्छाके आर्यसमाज भोग रहा है। जो खेदका विषय है।

२१- सत्यासत्य विवेक

ता २५ अगस्त १८७९ से ता. २७ अगस्त सन १८७९ तक तीन दिवस महर्षि दयानंद और पादरी टी. जी. स्काट साहेबका शास्त्रार्थ बरेलीमें हुवा उसमे महर्षिने अनेक स्थानोंपर ऐक्यवादिता प्रगट की है जो निम्न प्रकारहै।

विषयः--पुनर्जन्म।

(१) स्वामी दयानद सरस्वतीजीने कथन किया कि "जब इस सृष्टिमें विद्याकी आखसे मनुष्य देखे, तो सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ठीकठीक सिद्ध होता है कि देखो जो आज सोमवार वही फिर भी आता है - महिना, रात, दिन आदि भी पुन पुनः आते हैं - और गेहूका बीज बोनेसे फिर वही गेहूं आता है" महर्षिके उपरोक्त कथन और दृष्टान्तसे स्पष्ट सिद्ध है कि जो गेहू बोया जाता है वह अपनी शक्तिसे अपने समान नये गेहू उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव अपने समान नये जीव उत्पन्न करता है और इस कथनसे यह भी सिद्ध है कि जिस प्रकार गेहूसे गेहूं ही उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रत्येक जातिके जीवसे उसकी जातिका ही हम जिन्म जीव उत्पन्न होता है इसीका नाम पुनर्जन्म है। अत गेहूकी तरह नवीन जीव उत्पन्न होनेके कारण वह स्वरूपसे नित्य न होना सिद्ध होता है जिससे त्रैतवादका खंडन व ऐक्यवादका मडन होता है।

(२) इसके पश्चात् स्वामी दयानंद सरस्वतीजीने ईश्वर व जीवकी भिन्नताके संबधमें कथन किया कि "परमेश्वर अनंत है और जीव शान्त।" अतः जीवको शान्त माननेके कारण वह स्वरूपसे नित्य न होना सिद्ध है जिससे त्रैतवादका खडन व ऐक्यवादका मंडन होता है।

(३) इसके पश्चात् स्वामी दयानदजीने पादरी साहबके उत्तरमें कथन किया कि पादरी साहबने मुझे द्वैतवादी बताया है, सो ठीक नहीं है। मैं अद्वैतवादी हूं। इससे भी महर्षिका ऐक्यवादी होना सिद्ध है। किंतु नवीन आर्यसमाजी अपनेको त्रैतवादी ही कहते हैं।

विषयः-ईश्वर पापको क्षमा भी करता है।

(४) स्वामी दयानंदजीने पादरी साहबके कथनका उत्तर देते हुवे कहा कि "क्षमा करना तो चारों वेदोंमें कहीं भी नहीं लिखा। जब क्षमा करना है ही व्यर्थ, तो फिर ऐसी मिथ्यावातोंका उपदेश वेदोंमें क्यों कर हो सकता है" किंतु त्रैतवादके माननेवाले रूढीवादी नवीन आर्यसमाजी उपरोक्त कथनके विरुद्ध प्रतिदिन आरतीमें "पाप हरो देवा" के गीत गाते रहते हैं और अनेक वेदमंत्रोंका अर्थ पाप क्षमा कराने की करते रहते हैं। जो पाठकोके विचारणीय हैं।

२०- आर्य समाजके उपनियम।

महर्षि दयानंदने आर्यसमाजके नियम निर्माण किये उसके दशमें नियममें स्पष्टरूपसे लिख दिया था कि "सब मनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनमें परतन्त्र रहना चाहिये।" इस नियमके अनुसार जो पदाधिकारी या प्रतिष्ठित सभासदादि साधारण सभासे (सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालनकी दृष्टिसे) नियुक्त हो महर्षिने इनको त्यागपत्र देनेकी स्वतन्त्रता नहीं रखी थी। किंतु ता २६-१-३५ को आर्य सार्वदेशिक सभाने महर्षिके निर्माण किये हुवे उपनियमोंमें परिवर्तन करके धारा १६ के प्रत्यंतर किसी प्रतिष्ठित सभासद या अधिकारीका स्थान त्यागपत्र देनेपर रिक्त होना मानकर इस परिवर्तनमें नियम दशको बेअसर कर दिया गया है। दूसी कारण प्रत्येक आर्यसमाजके पदाधिकारी गण नियम दशके विरुद्ध त्यागपत्र देकर सामाजिक सर्वहितकारी नियमका उल्लंघन करते रहते है जो समाजके पतनका कारण है और इसी कारणसे पजाब प्रतिनिधिसभाने इन परिवर्तन किये हुवे उपनियमोंको स्वीकार नहीं किया। इसलिये वहांकी सब आर्यसमाजें प्राचीन उपनियम ही मानती हैं।

इसी प्रकार जो आर्यसमाज आर्य हिंदुओंको यह उपदेश देता है कि आर्य हिन्दु अपनी उपजातियोंकी पंचायतोंसे किसी स्त्री पुरुषको जाति बहिष्कृत न करे। वहां आर्यसमाज उपरोक्त उपनियमके नये परिवर्तनमें आर्य सदस्यतासे पृथक् करनेकी व्यवस्था देता है जिसके कारण रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी अपने बहुमतसे अनेक विद्वान लोगोंको जिन्होंने आर्य समाजमें कोई त्रुटि बताई आर्य सदस्यतासे पृथक् किये जा चुके हैं। जो आर्यसमाजके पतनका मूल कारण है। अतः इस हानिप्रद नवीन परिवर्तनको आर्य सार्वदेशिक सभाको शीघ्रातिशीघ्र निराकरण कर देना चाहिये ताकि आर्यसमाजकी संगठन शक्तिका ह्रास और पतन न हो।

२१- स्वीकार पत्र।

सबके अंतमें महर्षिने स्वीकार पत्र द्वारा एक परोपकारिणी सभाका निर्माण किया और उसके नियम एकमें लिख दिया कि उक्त सभा मेरे समस्त पदार्थोंकी रक्षा करके सर्व हितकारी कार्यमें लगाती रहे। और उपदेशमंडली नियत करके देशदेशांतर और द्वीप द्वीपान्तरमें भेजकर सत्यके ग्रहण और असत्यके त्याग कराने आदिमें लगाती रहे। किन्तु खेद है कि उपरोक्त स्वीकार पत्रके अनुसार परोपकारिणी सभाने न महर्षिके साहित्यकी रक्षा की और न प्रचार कार्य किया जो पाठकोंके विचारणीय हैं।

महर्षि लिखित संपूर्ण ग्रंथोंके उपरोक्त प्रमाणोंसे स्पष्टतः सिद्ध है कि महर्षिने वेदभाष्य और अपने प्रत्येक ग्रंथोंमें अनेक स्थानोंपर प्रकृति व जीवादि संपूर्ण जगतको परमेश्वरकी सामर्थ्यसे उत्पन्न होना बताकर त्रैतवादका खंडन करके ऐक्यवादका स्पष्टरूपसे मंडन किया है। किन्तु पौराणिक संस्कारोंके कारण रूढिवादी नवीन आर्यसमाजी महर्षि दयानंदके कथनके विरुद्ध त्रैतवादके प्रारब्धवादको माननेवाले हो गये है जो आर्यसमाजके पतनका मूल कारण है।

बहुतसे महानुभावोंको "द्वा सुपर्णा" मंत्रके भाष्य परसे त्रैतवादका भ्रम होता है इसका समाधान आगामी अङ्कमें विवरण सहित किया जाकर "द्वा सुपर्णा" मंत्रकी महत्वता पर विचार प्रकट किया जावेगा। तत् पश्चात् त्रैतवादकी प्रक्षिप्तता और इसकी हानियोंका दिग्दर्शन कराया जावेगा।

स्वर्गीय शिवकर बापूजी तळपदे

भारतका प्रथम विमानकर्ता

[विज्ञान-कथा भाग २ के लेखक श्री प्रह्लाद नरहर जोशी, एम ए, एम एड, के मराठी लेखके आधारपर]
(लेखक व अनुवादक-गणपतराव बा मोरे, कोल्हापूर)

वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है। आर्यसमाजका नियम ३। इस नियमके अनुसार आर्य समाजियोंने आजतक कौन कौन विद्याएं वेदसे खोज निकालीं, यह तो वे ही जानें। हां, इतना अवश्य जानता हू कि जिस आर्यसमाजी महाराष्ट्रीय वेदके अपूर्व विद्वानने वेदसे वेदविद्या सीखकर पहला विमान बनाया और मुंबईमें सफलतापूर्वक उडाया उसे आर्य समाज भुला बैठा है ! श्री प्रह्लाद नरहर जोशीजीके शब्दोंमें उनका संक्षिप्त संस्मरण कराना कर्तव्य समझता हू। ले०।

हमारे भारतवासी पूर्वजोंने भौतिक शास्त्रमें भी महान् प्रगति की थी। हमारे देशके शिल्पमें वेश्म, प्राकार, नगररचना, कृषि, जल, खनि, नौका, रथ, विमान और यत्र ये दस विभाग माने जाते थे। 'पुष्पक' विमानका नाम आपने सुना ही है। 'अग्नियान' शब्दका अर्थ भी विमान ही होगा। जब यह विद्या प्राथमिक अवस्थामें थी, तब सकटके समयमें किलेपरसे सुरक्षित स्थानपर जानेके लिए इस अग्नियानका उपयोग किया जाता था। इसी अग्नियानको बादमें 'विमान,' 'खेयान,' 'व्योमयान' आदि कहने लगे।

आधुनिक कालका एक उल्लेख यहां करने योग्य है। सन् १८९५ वर्ष था। मुबईकी चौपाटीपर एक चमत्कार देखनेके लिए लोगोंकी बडी भारी भीड जमी। विमानकर्ता थे स्व० शिवकर बापूजी तलपदे। यह गृहस्थ महाराष्ट्रीय थे और मुंबईमें चीराबाजारके समीप डुकरवाडीमें रहते थे। आपकी वृत्ति अभ्यासककी थी। आपका संस्कृत वेदविद्याका अभ्यास अपूर्व था। केवल तत्त्वज्ञान और काव्यपर मुग्ध होकर आपने वैदिक साहित्यका अभ्यास नहीं किया था। आपका विश्वास था कि वेदोंमें बताई हुई यन्त्रविद्या सत्य है। इनमें वर्णन किए हुए कुछेक प्रयोग हम भी कर देखें ऐसी जिज्ञासा इस संस्कृतज्ञ पण्डितको सहज ही हुई। विशेष बात यह है कि उनके इन प्रयोगोंमें उनकी धर्मपत्नी उन्हें बडी सहायक थी।

स्वर्गीय शिवकर बापूजी संस्कृतके पण्डित तो थे ही, परतु कल्पक शास्त्रज्ञ और सूक्ष्म बुद्धिके संशोधक होनेका महान यश भी आपको प्राप्त था। वे आर्यसमाजके अनुयायी थे, अतः वैदिक साहित्यकी विलक्षण प्रीति आपके मनमें बसती थी। कुछ समयतक आप 'आर्य धर्म' नामके पत्रका संपादन करते रहे। 'योगशास्त्रका भूतार्थ दर्शन' और 'गुरुमंत्र महिमा' ये [मराठी] पुस्तकें इनकी प्रज्ञाकी साक्षी देती हैं। कोल्हापूरके श्री शंकराचार्यने आपको 'विद्याप्रकाशप्रदीप' ऐसी पदवी दी थी।

श्री तलपदे स्कूल आफ आर्ट्स [मुंबई] में शिक्षक थे। यहीं आपने वेदमन्त्रोंके आधारपर एक विमान तैयार किया। विमानकी स्तुति सर्वत्र हुई। अनेकोंने शिवकरजीको उत्तेजना दी। उन्होंने अधिक संशोधन आरभ किया। आपकी कल्पना थी कि पारेका दाब बढानेसे विमानको यथेच्छ गति दी जा सकती है। इसीको सिद्ध करनेके लिए आप प्रयत्न करने लगे। ऋग्वेद मडल १० के सूक्त १९० के मन्त्रोंमें विमानका वर्णन आया है। इनपर भारद्वाजने टीकाग्रथ लिखा है। इनमें सूर्यकिरणोंके उपयोगका उल्लेख है। श्री शिवकरजीने अनुमान लगाया कि सूर्यकिरण और पारेका संयोग होनेसे विमानको गति मिलेगी। अपनी पत्नीकी सहायतासे आपने इसी सिद्धान्तके आश्रयसे विमान बनाया। मुबईके पब्लिक वर्क्स खातेके श्री पिटकरजीने भी आपको सहाय दिया।

वेदोंमें विमानका जो वर्णन आया है, उसमें आठ यंत्रोंके मेलके संबंधका लेख आया है। विद्युत शक्तिकी सहायतासे ये सब यंत्र चलते हैं और परस्पर गति देते हैं। सूर्यकिरणोंकी शक्ति और पारेके सयोगसे आठों यंत्रोंको वेग मिलेगा, ऐसा वर्णन भारद्वाजने दिया हुआ है। स्व० शिवकर बापूजीने इस वर्णनके अनुसार अपना विमान बनाया और उसका नाम 'मरुतसखा' रखा।

मुंबईके चौपाटीपर प्रयोग हुआ। विमान लगभग पन्द्रह सौ फूट ऊंचाईतक गया। यन्त्रोंकी विशेष प्रकारकी रचनाके कारण विमान नियोजित समयमें वापस आता था। न्यायमूर्ति रानडेजीने यह प्रयोग देखकर शिवकरजीको परदेशी विमानकर्ताओंसे परामर्श लेनेको कहा था। परंतु शिवकरजीका कदाचित् ऐसा विश्वास था कि जब अपने **वेदोंमें सब कुछ है, तो अन्योंको ये रहस्य हम बताएं क्यों ? +**

आगे उनके हाथसे कुछ भी प्रगति नहीं हुई। पत्नीके निधनके बाद उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उनके यंत्रादि उनके संबंधियोंने रॅली ब्रदर्सको * बेच दिए। इस प्रकार अपने भारतके आधुनिक कालका यह पहला महत्त्वका प्रयोग विस्मृतिमें लुप्त हो गया।

इतना होते हुए भी स्व० शिवकरजीकी इस कृतिकी हमें प्रशंसा ही करनी चाहिए। उस [१८९५ के] समयतक **यूरोप व अमेरिका भी ठीक प्रकार यशस्वी नहीं हुए थे। रॉइट बंधुओं और काउंट झेपॅलिनके नाम तबतक प्रकट नहीं हुए थे। ऐसे कालमें भारतमें किया हुआ एक महाराष्ट्रीय संशोधकका यह प्रयोग अभिमानास्पद ही है। विशेष उल्लेखनीय महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रयोगकी कल्पना और उसमें बर्ती हुई साहित्य सामग्री निज भारतीय थी। इनमें पाश्चात्योंसे कुछ भी उधार नहीं लिया गया था।"**

आगेका कर्तव्य

पाठको ! श्री जोशीजीका लेख समाप्त हुआ। अब आर्य-समाज मुंबईके सदस्योंका तथा वेदके विद्वानोंका कर्तव्य है कि—

१-'योगशास्त्रका भूतार्थ दर्शन' तथा 'गुरुमंत्र महिमा' स्वर्गीय शिवकर कृत ये दो पुस्तकें प्राप्त करके विद्वानोंसे निरीक्षण करवाना और यदि योग्य हों तो फिरसे छपवाना।

२- श्री जोशीजीने अपने लेखमें लिखा है कि "पं० शिवकरजी महाराष्ट्रीय थे और मुंबईमें चीराबाजारके पास डुकरवाडीमें रहते थे।" यदि उनका कोई संबंधी अब मिल सके तो उससे उनकी पुस्तकें, लेख, विमान बनानेके नोट, विमानके नकशे आदि जो कुछ भी प्राप्त हो सके वे सब क्रय कर लिये जायें। **यह एक महान धार्मिक और राष्ट्रीय संपत्ति है। इससे आगे अनुसंधान=Research करना सुकर होगा।**

३- श्री जोशीजीके कथन अनुसार ऋ १०।१९० में विमानका वर्णन है और उसपर भारद्वाजने टीका की है। इस सूक्तमें ३ मंत्र हैं। ये आर्यसमाजकी सन्ध्याविधिमें 'अघमर्षण मंत्र' कहलाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

ऋषि माधुच्छन्दसोऽघमर्षणः। देवता भाववृत्तम्।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ऋ १०।१९०

ये मन्त्र सनातन धर्मकी संध्याविधिमें भी आए हैं। परंतु दोनों स्थानोंमें इनके जो अर्थ किए गए हैं, उनसे तो इनमें विमानका वर्णन दीखता नहीं। कदाचित् प्रमाण अशुद्ध है। विद्वान् पता लगानेका कष्ट करें। भारद्वाजजीकी टीकासे शुद्ध प्रमाण भी मिल जायगा। सूर्यकिरणोंकी ओर भी कोई संकेत इन मंत्रोंमें नहीं।

४- आठ यंत्रोंके मेलसे विमानका बनाना किन वेदमंत्रोंमें आया है, इसकी खोज भी परमावश्यक है।

५- सूर्यकिरण और पारेके संयोगसे उपरोक्त आठों यन्त्र क्योंकर चलते हैं इसका वर्णन विद्वान लोग भारद्वाजकी

+ स्व० शिवकरजी ऋषि दयानन्दके इस सिद्धान्तको कि "वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है" बड़ी दृढतासे क्रियात्मक रूपमें माननेवाले पहले शिष्य सिद्ध हो रहे हैं। मोटे अक्षर हमारे हैं। [अनुवादक]

* मुंबई जैसे धन-सम्पन्न नगरमें, और आर्य समाज जैसे बुद्धिमान समाजके देखते देखते रॅली ब्रदर्सके हाथों शिवकरजीके यंत्र, उनकी पुस्तकें भी कदाचित् चली गई, इसका जितना खेद किया जाय उतना थोड़ा है। [लेखक]

टीकाका अनुवाद करके बताएं, तो राष्ट्रीय उन्नतिमें बडी सहायता मिलेगी।

६—धर्म-पत्नीके निधनके बाद स्व० शिवकरजीको वैराग्य होनेका कारण यह भी हो सकता है कि वे उनकी अपूर्व सहायतासे वञ्चित हो गए। कदाचित् इसीलिए उन्होंने विमानको अधिक सुधारनेका कार्य छोड दिया। विज्ञान-कथा भाग २, (प्रकाशक-गो० ब० जोशी, आनन्दकार्यलय, ३३० सदाशिव, पूना २) में शिवकरजीका फोटो छपा है। इसे फोटोग्राफी द्वारा बढाकर वा Enlarge कराकर आर्य-समाज मंदिर मुंबईमें रखवाना कर्तव्ययुक्त शोभाका कार्य है। यदि उनकी विदुषी स्त्रीका फोटो भी मिल सके तो अधिक उत्तम। दोनोंको एन्लार्ज कराकर एक ही फ्रेममें मढवा दिया जाय।

७—हम भारतीय लोग विज्ञानकलासे कितने दूर रहते हैं और पाश्चात्योंका इससे कितना प्रेम है, यह इस कथासे सिद्ध होता है। बताइए मुंबईमें रहनेवाले अनेकों बी एस सी, एम एस सी, मिलोंके मालक, एन्जिनीअरों, धनाढ्य व्यापारियोंकी उपस्थितिमें रॅली अदर्स ही क्यो स्व० शिवकर-जीने 'मरुत्सखा' और तत्संबंधो यन्त्र और नकशों, पुस्तकों आदिको क्रय कर सके?

यदि यूरोप आदि देशमें इस प्रकारका प्रदर्शन होता, तो **मरुत्सखा** के सामनेका, बाजूका, पीछेका उसके मुख्य अवयवोंका, उडते हुएका ऐसे कई फोटो लिए जाते, जिनकी सहायतासे वैमानिक उन्नति आज भी सुकर हो जाती। दुःख है कि मुंबई जैसे नगरके सहस्त्रों फोटोग्राफरोंमेसे एकने भी 'मरुत्सखा' का फोटो नहीं लिया।

'जिन खोज्या तिन पाइया' के अनुसार यदि अब भी खोज की जाय तो कौन जाने क्या क्या रत्न प्राप्त हों। कदाचित् 'मरुत्सखा' का पूर्ण नकशा ही प्राप्त हो जाय। [लेखक]

आगामी संस्कृत भाषा परीक्षायें

सीधे बैठनेके लिये प्रार्थनापत्र--ता. १५ दिसम्बर ५३ तक

परीक्षा - आवेदनपत्र — ता. ३१ दिसम्बर ५३ तक

परीक्षा दिनाङ्क -- ता. १३ व १४ फरवरी ५४ ई.

वेद–उपनिषद्–गीताकी परीक्षाएँ भी इन्हींके साथ होंगी। इन परीक्षाओंकी विवरण-पत्रिका मंगवाइये।

क्या षडध्यायी सांख्यसूत्र कपिल--प्रोक्त नहीं ?

[लेखक— आचार्य शुक्ल भारती]

अप्रैल १९५० के 'वैदिक धर्म' में 'सांख्यदर्शनमें ईश्वरवाद' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक हैं- श्रीयुत सोमचैतन्य जी सांख्यशास्त्री वेद वागीश। विद्वान् लेखकने इस लेखके प्रारम्भिक भागमें यह सिद्ध करनेका यत्न किया है, कि वर्तमान षडध्यायी सूत्र, कपिल-प्रणीत नहीं हैं। इस लेखके द्वारा हम सांख्यकी ईश्वरवादिताके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश नहीं डालना चाहते। केवल इतने अंशपर ही विचार करना अभीष्ट है, कि वर्तमान षडध्यायी सांख्यसूत्र, कपिलप्रणीत है, अथवा नहीं।

मूल ग्रन्थोंमें समझे जानेवाले, सांख्यके तीन ग्रन्थ अभीतक प्रकाशमें आये हैं। १- सांख्यषडध्यायी, २- तत्त्वसमास, ३- सांख्यकारिका, इनके अतिरिक्त पञ्चशिख, देवल, वार्षगण्य तथा रुद्रिल (विन्ध्यवास) आदि आचार्योंके भी कुछ महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें उद्धृत हुए उपलब्ध होते हैं। इस समय प्रथम तीन ग्रन्थोंके सम्बन्धमें ही हम यहां विवेचन करेंगे।

कपिलने जिस शास्त्र की रचना की, उसके 'षष्टितन्त्र' तथा 'सांख्य' ये दोनों ही नाम लोकमें प्रसिद्ध या प्रचलित रहे हैं। कपिल शास्त्रके इन दोनों नामोंका विशेष आधार है। इस शास्त्रमें आध्यात्मिक और आधिभौतिक दो दृष्टियोंसे तत्त्वोंका विवेचन किया गया है। आधिभौतिक दृष्टिसे यहां पचीस तत्त्वोंका विवेचन है। वस्तुत सांख्य, तत्त्वोंके दो ही वर्ग मानता है, एक चेतन दूसरा अचेतन। चेतन वर्गमें अनन्त पुरुष [आत्मा अथवा जीवात्मा] और एक परमात्मा है, तथा अचेतन वर्गमें है- सत्त्व, रजस्, तमसकी साम्यावस्था रूप मूल प्रकृति और उसके विकार। हां, तो आधिभौतिक दृष्टिसे विवेचनके आधारपर इस शास्त्रका नाम 'सांख्य' है। 'संख्या' कहते हैं, ज्ञान को। चेतन, अचेतन अथवा पुरुष और प्रकृतिके भेदज्ञानका निरूपक होनेसे यह शास्त्र 'सांख्य' कहा जाता है। इस विवेचनामें आधिभौतिक तत्त्वोंके स्वरूप आदिका ही विस्तृत वर्णन रहता है। उनके स्वरूपका वास्तविक ज्ञान होनेपर, उनसे भिन्न, चेतन आत्माका भी हमें ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार अनन्त परमाणु रूप एक मूल प्रकृति, तेईस वर्गोंमें विभक्त उसके विकार ये अचेतन और इनसे भिन्न पचीसवां चेतनवर्ग; इनके भेदज्ञानका निरूपण करना ही सांख्यशास्त्रका मुख्य विषय है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे तत्त्व विवेचनका मुख्य आधार 'आत्म-साक्षात्कार' है। जब कोई व्यक्ति आत्माके साक्षात्कारके लिये अग्रसर होता है, तब उसके सन्मुख कुछ ऐसी अवस्थाएं आती हैं, जिनको उसे पार करना पडता है। ये अवस्था बुद्धि-कृत होती हैं, इसलिये इनको भाव जगत्की अवस्था या भावभूमि भी कहा जाता है। शास्त्रमें इनको स्थूल रूपसे पचास भागोंमें विभक्त किया है। वे हैं-

५-	विपर्यय
२८-	अशक्ति
९-	तुष्टि
८-	सिद्धि
५०	

इस विवेचनामें आधिभौतिक विचार-क्षेत्रके पचीस तत्त्वोंकी अपेक्षा नहीं की गई। उन सबको यहां दश मौलिक या मूलिक अर्थोंके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इनका सामञ्जस्य सांख्य ग्रंथोंमें स्पष्टरूपसे उपलब्ध है, यहां विस्तारभयसे उसका उल्लेख नहीं किया जारहा × है। इस प्रकार दश मौलिक अर्थ, और पचास बुद्धि-सर्ग, ये साठ पदार्थ आध्यात्मिक दृष्टिसे शास्त्रके विवेच्य विषय होते हैं। इसीके आधारपर इस शास्त्रका नाम 'षष्टितन्त्र' कहा जाता है।

× मौलिक दश अर्थ और पचीस तत्त्वोंके सामञ्जस्यके लिये देखिये- माठर वृत्ति, कारिका ७२। जयमंगला व्याख्या, कारिका ५१। सांख्यतत्व कौमुदी, कारिका ७२॥ हमने यह विषय, विद्याभास्कर पं. उदयवीर शास्त्रीके 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रन्थसे दिया है; जो अभी 'विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर, जि० सहारनपुर' ने प्रकाशित किया है।

इस बातके लिये बहुतसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं, कि कपिलने जिस शास्त्र या ग्रन्थकी रचना की थी, उसका नाम ' षष्टितन्त्र ' × अथवा ' सांख्य ' था। अब प्रश्न होता है, वर्तमान कालमें उपलब्ध होनेवाला वह कौनसा ग्रन्थ है, जिसकी रचना कपिलने की। ' वैदिक धर्म ' के प्रस्तुत लेखमें इस बातका निर्णय किया गया है, कि कपिलकी रचना, केवल ' तत्त्वसमास ' सूत्र हैं। षडध्यायी सूत्रोंके कपिल-प्रणीत न होनेमें जो युक्तियां उक्त लेखक महोदयने उपस्थित की हैं, उनका यथाक्रम निर्देश करते हुए, हम साथ ही साथ उनका विवेचन भी करते जाना चाहते हैं।

(१) आपेक्ष = तत्त्वसमासकी सर्वोपकारिणी टीकाके प्रारम्भमें एक सन्दर्भ है, जिसके आधारपर यह स्पष्ट होता है, कि तत्त्वसमास सूत्र विष्णुके अवतार कपिल के बनाये हैं, और षडध्यायी सूत्र, अग्निके अवतार कपिलके बनाये हुए हैं। कमसे कम इस लेखसे यह स्पष्ट होजाता है, कि इन दोनों ग्रन्थोंका रचयिता कोई एक ही व्यक्ति नहीं है।

समाधान = विद्वान् लेखक महोदयने आगे इसी लेखमें यह स्पष्ट किया है, कि षडध्यायी सूत्रोंकी रचना ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके अनन्तर हुई है। यदि इन दोनों निर्देशोंको मिला दिया जाय, तो इसका अभिप्राय यह होता है, कि ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके अनतर अग्निके अवतार कपिलने इन षडध्यायी सूत्रोंकी रचना की। क्या लेखक महोदय इस बातको किसी भी ऐतिहासिक प्रमाण, संकेत अथवा उल्लेखोंके आधारपर सिद्ध कर सकेंगे, कि चौदहवीं शताब्दीके अनन्तर, अग्निके अवतार कपिल नामक व्यक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है ?

वस्तुस्थिति यह है, कि सर्वोपकारिणी टीकाका सन्दर्भ प्रवादपरम्पराके आधारपर लिखा गया है। वह सांख्यके प्रवर्तक दो कपिल व्यक्तियोंकी सिद्धिके लिये निर्बाध प्रमाण नहीं कहा जा सकता। एक ही कपिलको गुणविशेषोंके आधारपर कहीं विष्णु कहीं अग्निके अवतार रूपमें वर्णन किया है। प्राचीन साहित्यके इन वर्णनोंकी विशेषताको ध्यानमें न लानेके कारण मध्यकालीन विद्वानोंकी कदाचित् यह धारणा होगई, कि कपिल नामके ये पृथक् पृथक् व्यक्ति थे। यदि पं० सोमचैतन्यजीके विचारोंको ठीक माना जाय, कि षडध्यायी सूत्रोंकी रचना, अग्निके अवतार कपिलके द्वारा चौदहवीं शताब्दीके अनन्तर हुई है, तो महाभारत आदिमें अग्निके अवतार कपिलके वर्णनका सामञ्जस्य कैसे होगा ? ' अग्नि स कपिलो नाम सांख्यशास्त्रप्रवर्तकः ' अतएव वास्तविकता यही है, कि एक ही कपिल सांख्य-शास्त्रका प्रवर्तक है, जिसकी माताका नाम देवहूति और पिताका कर्दम प्रजापति था। इसी आदि विद्वान् कपिलने सांख्यके मूल ग्रन्थ षडध्यायी सूत्रकी रचना की है, इसीका अपर नाम ' षष्टितन्त्र ' है, यह हम अभी आगे स्पष्ट करेंगे। उसी षडध्यायीकी सूची या तालिका मात्र तत्त्व-समास सूत्र हैं। वह विषय सूची भी कपिलकी ही निर्देश की हुई है। उस एक ही कपिलको उसके भिन्न भिन्न गुणों व कार्योंके कारण भिन्न भिन्न रूपोंमें यत्र तत्र प्राचीन साहित्यमें वर्णन किया गया है।

यदि इस बातको माना जाय, कि आदि विद्वान् विष्णुके अवतार कपिलने केवल तत्त्वसमास सूत्रोंकी, रचना की तब षडध्यायी सूत्रोंके रचयिता अग्निके अवतार कपिलको सांख्यशास्त्रका प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता, जैसा कि महाभारतके उपर्युक्त वाक्यमें कहा गया है, किसी भी शास्त्रका प्रवर्तक तो एक ही व्यक्ति होसकता है, अन्य सब उसके अनुयायी या जीर्णोद्धारक कहे जासकते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि एक ही कपिल सांख्यशास्त्रका प्रवर्तक है और उसीकी ' षडध्यायी, सूत्र ' और ' तत्त्वसमास ' दोनों रचनायें हैं।

(२) आक्षेप = जबतक विरोधी प्रमाण न मिले, तबतक येसूत्र कपिल-प्रोक्त माने जायें, इसमें हमारा मतभेद नहीं है। परन्तु निश्चयपूर्वक यह कहना कि यह कपिल-प्रोक्त ही हैं- कठिन है। कारण कि प्रमाण रूपमें ये कहीं भी अभीतक उद्धृत किये गये नहीं मिले हैं।

समाधान = विद्याभास्कर श्री पं० उदयवीर शास्त्रीके ' सांख्य दर्शनका इतिहास ' नामक ग्रन्थमें,प्राचीन साहित्यसे बीस बाईस सूत्रोंके निर्देश दिये गये हैं, जो षडध्यायीके सूत्र उन उन ग्रन्थोंमें उद्धृत पाये गये हैं। दो एक स्थलोंका हम यहां निर्देश करते हैं। अधिकके लिये मूल ग्रन्थ देखना चाहिये।

× वेदान्त सूत्र, भास्कर भाष्य, २।१।१॥

(क) इस विचारको सभी आधुनिक विद्वानोंने स्वीकार किया है, कि ईश्वर कृष्णकी कारिकाओंसे, गौतम न्यायसूत्रोंका वात्स्यायन भाष्य प्राचीन है। इतना प्राचीन है, कि सांख्यसप्ततिके रचयिता ईश्वर कृष्णके प्रादुर्भावसे पर्याप्त पूर्व ही वात्स्यायन मुनिका देहावसान हो चुका था। वात्स्यायन भाष्यमें सांख्यषडध्यायीके तीन सूत्र उपलब्ध होते हैं। गौतम सूत्र ४।१।४८ की व्याख्यामें सांख्यमतसे सदकार्यवादकी स्थापना करते हुए वात्स्यायनने सत्कार्यकी सिद्धिमें ' उपादाननियमात् ' हेतु दिया है, जो सांख्यषडध्यायीमें इसी वादको सिद्ध करनेके लिये सर्वप्रथम सूत्र है। इसके अतिरिक्त ५।२।६ में हेत्वन्तर निग्रहस्थानका उदाहरण देते हुए सांख्यमतसे विकारोंको प्रकृतिजन्य बतानेके लिये वात्स्यायनने ' परिमाणात् ' और ' समन्वयात् ' इन दो हेतुओंका निर्देश किया है। ये दोनों हेतु सांख्यषडध्यायीमें इसी वादको सिद्धिके लिये इसी क्रमसे विद्यमान हैं।

(ख) ' सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ' यह सांख्यषडध्यायीका १।६१ सूत्र है। इस अर्थको इस रूपमें बतलानेवाला कोई सन्दर्भ सांख्यकारिकामें उपलब्ध नहीं होता। परन्तु इस अर्थका इसी आनुपूर्वीमें शंकर * और सायण ※ के ग्रन्थोंमें स्पष्ट वर्णन किया गया है। उक्त लेखोंका आधार, षडध्यायी सूत्रके अतिरिक्त और कोई नहीं कहा जासकता।

(ग) वेदान्त सूत्र शांकर भाष्यमें एक और सूत्र भी स्पष्ट उद्धृत किया गया है। हम यहां ' सांख्यदर्शनका इतिहास ' नामक ग्रन्थसे उस प्रसंगको अविकल रूपमें उद्धृत कर देते हैं—

" आदि शंकराचार्यके वेदान्त सूत्र- भाष्यमें सांख्य षडध्यायीका एक सूत्र और उपलब्ध होता है। २।४।९ सूत्रपर भाष्य करते हुए लिखा है-

अथवा तन्त्रान्तरीयाभिप्रायात् समस्तवृत्ति प्राण इति प्राप्तम्। एवं हि तन्त्रान्तरीया आचक्षते—' सामान्या करणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ' इति।

इस सन्दर्भमें ' सामान्या करणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ' यह सांख्यषडध्यायीके दूसरे अध्यायका ३१ वां सूत्र है।

यहां यह कहा जा सकता है, कि सांख्यसप्तति की २९ वीं आर्याका उत्तरार्द्ध ही भाष्यमें उद्धृत किया गया है, सांख्यषडध्यायीका सूत्र नहीं।

परन्तु यह कहना युक्त न होगा, क्योंकि जिस पाठको शंकराचार्यने उद्धृत किया है, वह कारिका अथवा आर्या रूप होना असंभव है। उस पाठमें आर्याछन्द नहीं बन सकता। यह कहना भी निराधार होगा, कि शंकराचार्यने कारिकाके आधारपर ही कुछ पाठ भेद करके ऐसा लिख दिया; क्योंकि उद्धृत वाक्यसे पूर्व और अपरके ' आचक्षते ' तथा ' इति ' ये पद इस बातको स्पष्ट करते हैं, कि शंकराचार्य यहां तन्त्रान्तरके पाठको ही उद्धृत कर रहे हैं। वह पाठ आर्याकी आनुपूर्वीमें कभी संगत नहीं हो सकता। यद्यपि उद्धृत पाठमें आर्याके पाठसे बहुत ही साधारण भेद है, परन्तु वह भेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस भेदके आधारपर सूत्रकी वास्तविक आनुपूर्वीका पता लगता है।

यद्यपि षडध्यायीकी मुद्रित पुस्तकोंमें इस समय सूत्रका पाठ भी कारिकानुसारी ही उपलब्ध होता है, परन्तु यह निश्चित रूपमें कहा जा सकता है, कि शङ्कराचार्यके समय सूत्रपाठकी यही आनुपूर्वी थी, जो उसने उद्धृत की है। पश्चात् कारिका पाठके अभ्यासके कारण प्रमादवश लेखकों द्वारा सूत्रपाठको भी कारिकानुसारी बना दिया गया, शङ्कराचार्यका उल्लिखित पाठ इस बातका प्रबल प्रमाण है। शांकर भाष्यके जितने भी प्रामाणिक संस्करण + उपलब्ध

* देखें- वेदान्त सूत्र, शांकर भाष्य, २।१।२९ ॥

※ सूत संहिता, विद्यारण्यकृत व्याख्या, पृष्ठ ४०७, मद्रास संस्करणके आधारपर।

+ १- पूना संस्करण, २- वाणी विलास संस्करण, ३- चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस संस्करण, ४- बम्बईका मूलमात्र संस्करण, ५- रत्नप्रभा-भामती आनन्दगिरि टीका सहित बम्बई [निर्णय-सागर] संस्करण, ६- भामती-कल्पतरु-कल्पतरुपरिमल टीकाद्वुटीकासहित बम्बई संस्करण।

होते हैं, और जो भिन्न भिन्न पाण्डुलिपियोंके आधारपर, भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें प्रकाशित किये गये हैं, सबमें यही एक पाठ है। पर अब शांकर भाष्यके हिन्दी × अनुवादोंमें जो पाठ दिये हैं, वे भ्रष्ट कर दिये गये हैं। कारिका पाठके अभ्यासके कारण हिन्दी अनुवादकोंने शांकर भाष्यके पाठको भी कारिकानुसारी बना दिया है, जो सर्वथा असंगत है।" [सांख्यदर्शनका इतिहास, पृष्ठ १९०-९१]।

इस आधारपर प्रतीत होता है, कि षडध्यायीके सूत्र प्राचीन साहित्यमें उद्धृत अवश्य किये गये हैं, परन्तु उनके संग्रहका किसीने यत्न नहीं किया। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंके यह लिख देनेपर, कि ये सूत्र चौदहवीं शताब्दीके पश्चात् बनाये गये हैं, जो सर्वथा भ्रान्तिमूलक है, उसीका अन्धानुकरण भारतीय विद्वान् भी कर रहे हैं। इसलिये यह कथन सर्वथा निराधार है, कि इन सूत्रोंको कहीं उद्धृत नहीं किया गया।

(३) आक्षेप = तत्त्वसमासके कपिल-प्रोक्त होनेके पक्षमें यह कहा जा सकता है, कि भगवान् कपिलने अति संक्षिप्त रूपसे आसुरिको उपदेश दिया था। .. उस समय संकेत मात्रसे ही ज्ञानका ग्रहण हो जाता था। अतएव भगवान् कपिलने भी ' अष्टौ प्रकृतयः। १। षोडश विकाराः। २। पुरुषः। ३। त्रैगुण्यम्। ४।' इस प्रकारके संकेत सूत्रोंद्वारा आसुरिको प्रकृति पुरुषका विवेक कराकर मोक्ष लाभ करा दिया हो, यह सम्भव है। प्रमाण रूपसे इन सूत्रोंके उद्धृत न किये जानेका कारण यह हो सकता है, कि इनमें तत्त्वोंका परिगणन मात्र है, पक्ष प्रतिपक्षके स्थापन खण्डन द्वारा किन्हीं सिद्धान्तोंकी पुष्टि नहीं की गई है।

समाधान = लेखक महोदयने उक्त संदर्भमें दो बातोंपर प्रकाश डाला है, (क) कपिल द्वारा अतिसंक्षेपमें आसुरिको उपदेश, जो ' तत्त्व-समास ' रूपमें सम्भव है (ख) इन सूत्रोंका प्रमाण रूपमें उद्धृत न किये जानेका कारण। पहले प्रथम अंशपर विचार किया जाता है।

(क) कहीं भी प्राचीन लेखोंमें ऐसा संकेत नहीं मिलता, जिससे यह प्रमाणित हो, कि कपिलने आसुरिको अतिसंक्षेपमें तत्त्वोंका उपदेश किया। इस सम्बन्धमें सबसे प्राचीन लेख पञ्चशिखका कहा जा सकता है। उसका लेख है—

आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।

इस संदर्भमें अतिसंक्षेपसे उपदेश किये जानेका कोई संकेत नहीं है। प्रत्युत अंतमें ' तन्त्र प्रोवाच ' पद हैं, जिनका स्पष्ट अर्थ है, कि तन्त्रका प्रवचन किया। पञ्चशिखके संदर्भमें ' तन्त्र ' पद ' षष्टितन्त्र ' का ही संकेत करता है। इस लेखके प्रारम्भमें हम यह निर्देश कर आये हैं, कि इसीका अपर नाम ' सांख्य ' है। ' तंत्र प्रवचन ' अथवा ' सांख्य प्रवचन ' ये दोनों पद सर्वथा समानार्थक हैं। उसी प्रवचनका विषय संक्षेप, विषयसूची अथवा तालिका मात्र ' तत्त्वसमास ' सूत्र हैं। क्योंकि ग्रन्थकारने अपने ग्रथमें प्रतिपाद्य तत्त्वोंका संक्षेपसे इसमें निर्देश कर दिया है। यह कोई आवश्यक नहीं, कि यदि एक ग्रन्थकार ऐसा करता है, तो अन्य प्रत्येक ग्रन्थकारको ऐसा करना ही चाहिये। इसलिये इस कथनमें कोई प्रमाण नहीं, कि कपिलका उपदेश अति संक्षेपमें हुआ, और वह ' तत्त्वसमास ' रूपमें था।

(ख) तत्त्वसमास सूत्रोंके उद्धरण भी प्राचीन साहित्यमें उपलब्ध होते हैं। यह अलग बात है, कि शंकराचार्य आदिके ग्रंथोंमें इनका कोई उद्धरण नहीं मिलता। षडध्यायी सूत्रोंके तथाकथित अनुद्धरणसे इनकी विशेषता प्रकट करनेके लिये, इनके उद्धृत न किये जानेका जो कारण लेखकने प्रदर्शित किया है, वह इतना बलवान् नहीं कहा जा सकता। कमसे कम, पदार्थोंकी गणना मात्रके लिये ही शंकर आदिके ग्रंथोंमें इनका उद्धरण होता। अतः आपके कहे कारणके आधार पर, जहांतक सूत्रोंके उद्धरणका प्रश्न है, षडध्यायी सूत्रोंसे इनकी विशेषता प्रदर्शित नहीं की जा सकती।

(४)- आक्षेप = संक्षेप और विस्तारकी भावनाको लेकर लेखक महोदयने विज्ञान भिक्षुके भाष्यकी प्रारंभिक पंक्तियोंके आधारपर लिखा है— " कि योग प्रवचनकी

× १- ब्रह्मचारी विष्णुकृत हिन्दी अनुवाद, वेदान्तकेसरी कार्यालय आगरासे प्रकाशित। २-अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशीसे प्रकाशित।

तरह षडध्यायीका नाम भी सांख्य-प्रवचन है, क्योंकि तत्त्वसमास नामक संक्षिप्त सांख्यदर्शनका ही इसमें प्रकर्षतया विवेचन है। परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि (१) इसके सदृश वह कौनसा संक्षिप्त योगदर्शन है जिसका प्रकर्षेण निर्वचन 'योगप्रवचन' में किया गया है? (२) संक्षेप और विस्तार रूपसे दो दर्शन ग्रंथोंके निर्माणकी कपिलको आवश्यकता क्यों पड़ी? क्या षडध्यायीके निर्माणसे ही 'तत्त्वसमास' की गतार्थता नहीं हो जाती?"

समाधान = प्रथम अंशके सम्बन्धमें निवेदन है, 'योगदर्शन' की 'योगप्रवचन' सज्ञा कहीं नहीं है। यह लेखककी अपनी निराधार कल्पना है। विज्ञानभिक्षुकी पक्तियोंका अर्थ समझनेमें कदाचित् उनको भ्रान्ति हुई है। वहां अभिप्राय यही है, कि योगदर्शनकी तरह षडध्यायीको भी 'सांख्यप्रवचन' सज्ञा है। अर्थात् इन दोनों दर्शनोंको 'सांख्यप्रवचन' नामसे कहा जाता है। परन्तु विशेषता यह है, कि षडध्यायीमें तो 'तत्त्वसमास' में कहे अर्थोंका विस्तार मात्र है, और योगदर्शनमें, ईश्वरका निरूपण करनेसे न्यूनताको भी पूरा कर दिया गया है। भिक्षुकी पंक्तियोंसे लेखकने योगदर्शनकी 'योगप्रवचन' सज्ञा कैसे निकाल ली? हम नहीं समझ सके। वस्तुत सांख्य और योगमें सिद्धान्त रूपमें कोई मौलिक भेद नहीं है, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे सांख्यमें स्वीकृत अर्थोंको ही योगदर्शनमें अगीकार कर लिया गया है। सांख्यमें प्रकृति-पुरुष साक्षात्कार अथवा भेदज्ञानके लिये बताये गये उपाय भूत 'समाधि' का ही योगदर्शनमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस प्रकार योगदर्शन, सांख्यके एक अशका ही विवेचन करता है। अतएव उसका नाम भी 'सांख्य-प्रवचन' माने जानेमें कोई असामञ्जस्य नहीं।

अन्य विद्वानोंने भी योगदर्शनके इस नामको स्वीकार किया है। देखिये, सांख्यकारिकाकी २३ वीं आर्याकी जयमंगला व्याख्या, और सर्वदर्शन संग्रहका सांख्य-योग प्रकरण। वहां सांख्यप्रवचनके नामसे योगदर्शनके सूत्रोंको उद्धृत किया गया है। इस प्रकार सांख्य एवं योगमें जिन अर्थोंका वर्णन किया गया है, उनका ही संक्षेपसे 'तत्त्व समास' सूत्रोंमें निर्देश है। हम इस बातको प्रथम लिख चुके हैं, कि ये सूत्र, सांख्यदर्शनके प्रतिपाद्य विषयोंकी संक्षिप्त सूची मात्र हैं।

इस प्रकार आक्षेपके द्वितीय अंशका अवकाश ही नहीं रहता। कपिलने केवल एक मूलदर्शनकी रचना की, और वह षडध्यायी है। तत्त्वसमास पृथक् दर्शन नहीं।

कपिलने केवल 'तत्त्वसमास' की रचना की; इस मन्तव्यके विरोधमें सबसे प्रबल प्रमाण ईश्वर कृष्णका वर्णन हो है। ईश्वरकृष्णकी ऐसी साक्षी है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। उसने सांख्यकारिकाकी अंतिम चार उपसंहारात्मक आर्याओंमें इस अर्थका स्पष्ट वर्णन किया है। उसने लिखा है- कि मैंने अपने इस ग्रथमें जिन अर्थोंका प्रतिपादन किया है, वे सब 'षष्टितंत्र' के हैं। परंतु उसके आख्यायिका और परवादोंको यहां छोड दिया है। ७२। ईश्वरकृष्णने अपने ग्रन्थकी प्रामाणिकताको पुष्ट करनेके लिये 'षष्टितन्त्र' ग्रथका संबंध साक्षात् कपिलसे प्रदर्शित किया है। वहां लिखा है, कि इस पवित्र ज्ञानके प्रतिपादक शास्त्रका कपिल मुनिने आसुरिको उपदेश किया, आसुरिने पञ्चशिखको, पञ्चशिखने अनेक शिष्योंको पढाया और उसपर विस्तृत व्याख्या ग्रथ लिखे। वही शास्त्र, गुरु शिष्य परपरा द्वारा मुझतक प्राप्त हुआ है, और मैंने उसीका इन आर्याओंमें संक्षेप किया है। इस प्रकार मेरे ग्रन्थमें सब अर्थ उसी षष्टितंत्रके हैं, केवल आख्यायिका और परवादोंको छोड दिया गया है। ६९-७२। ईश्वरकृष्णके इस वर्णनसे ये स्पष्ट परिणाम निकलते हैं—

(क) कपिलने एक शास्त्रकी रचना की।
(ख) वही शास्त्र, गुरु-शिष्यपरपरा द्वारा मुझतक प्राप्त हुआ है।
(ग) उसका ही मैंने आर्या छदोंमें संक्षेप किया है।
(घ) वह ग्रथ षष्टितंत्र है, जो मेरे ग्रथका आधार है।
(ङ) उसके आख्यायिका और परवाद अंशको मैंने अपनी रचनामें छोड दिया है।

ईश्वरकृष्णके इस वर्णनका सामञ्जस्य, 'तत्त्वसमास' के साथ कदापि नहीं हो सकता। प्रत्युत इसके विरुद्ध, उक्त कथनका पूर्ण सामञ्जस्य, षडध्यायीके साथ स्पष्ट है। हम इस बातको अभी आगे स्पष्ट करेंगे, कि यह सर्वथा एक उलटी बात कही जाती है, कि षडध्यायीकी रचना

कारिकाओंके आधारपर हुई है। वस्तुस्थिति यह है, कि ईश्वरकृष्णने जिस कपिल कृतिके आधारपर अपने ग्रन्थकी रचना की, वह षडध्यायी ही है।

लेखक महोदयने अपने विचारोंकी पुष्टिके लिये वृत्तिकार अनिरुद्ध तथा अन्य व्याख्याकारोंके समयका भी अपने लेखमें संकेत किया है। हम यहां इन पंक्तियोंके द्वारा इसकी विवेचनामें उतरना नहीं चाहते। परंतु इतना निर्देश कर देना आवश्यक होगा, कि वृत्तिकार अनिरुद्धका जो काल सायणके अनन्तर बताया गया है, वह सर्वथा अशुद्ध है। अनिरुद्ध, सायणकी अपेक्षा कई शताब्दी पूर्व होचुका है। इसके लिये 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रंथमें बड़ी ऊहापोहके साथ अनेक प्रमाणोंका संग्रह किया गया है।

षडध्यायी सूत्रोंके सभी व्याख्याकारोंने इन सूत्रोंको स्पष्टरूपमें कपिलकी रचना माना है। परन्तु यह सब होते हुए भी इन सूत्रोंके संबंधमें अन्य अनेक ऐसी बातें हैं, जिनको देखते हुए, इन सूत्रोंको कपिलकी रचना माने जानेके लिये अधिक उत्साह नहीं होता। उन सब बाधाओंका उल्लेख 'आधुनिक विद्वानोंका मत' उपशीर्षक देकर विद्वान् लेखकने प्रस्तुत लेखमें विस्तारके साथ किया है। उनका यथाक्रम विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अनिरुद्ध पंद्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं, उनसे पूर्व किसीकी टीका नहीं मिलती।

समाधान = लेखकका अभिप्राय यह है, कि पद्रहवीं शताब्दीसे पूर्व सांख्य षडध्यायीकी कोई टीका उपलब्ध नहीं होती, अतः पंद्रहवीं शताब्दीसे अधिक पूर्व इन सूत्रोंकी स्थिति नहीं मानी जानी चाहिये। परंतु यह युक्ति बहुत लचर है। प्रथम तो अनिरुद्धका समय पद्रहवीं शताब्दीसे लगभग चार सौ वर्षोंसे भी पूर्व है। यदि ग्यारहवीं शताब्दीमें भी अनिरुद्धका काल माना जाय, तो भी षडध्यायीको कपिलकी रचना माने जानेपर, इतने समय तक उसपर किसी भाष्यका उपलब्ध न होना अवश्य चिंतनीय समझा जा सकता है। यदि इस युक्तिको इसी रूपमें ठीक माना जाय, तो हम यह कह सकते हैं, कि ऋग्वेद पर आजतक सबसे पहला भाष्य स्कन्दस्वामी-नारायण-उद्गीथका उपलब्ध होता है, जिनका प्रादुर्भाव विक्रमके छठे शतकमें माना जाता है। क्या इस आधारपर उक्त समयसे अधिक पूर्वमें ऋग्वेदकी सत्तापर आशंका की जा सकती है?

कदाचित् कहा जा सकता है, कि ऋग्वेद आदिके संकेत ब्राह्मण आदि ग्रंथोंमें प्राचीनकालसे उपलब्ध होते हैं, इसलिये उनकी प्राचीनतामें शंका नहीं की जा सकती, भले ही उनका कोई प्रतिपद-व्याख्यान भूत भाष्य न हो। ठीक यही बात सांख्यके लिये भी कही जा सकती है। पञ्चशिख, देवल, वार्षगण्य आदि आचार्योंके उपलब्ध सन्दर्भोंमें षडध्यायी सूत्रोंके संकेत विद्यमान हैं। अहिर्बुध्न्य संहिता तथा महाभारत आदिमें भी इस प्रकारके संकेत उपलब्ध होते हैं। यह अधिक संभव है, कि अतिप्राचीन कालमें शास्त्रका अध्ययनाध्यापन मौखिक रूपमें अधिक होता रहा होगा। जो भाष्य लिखे भी गये होंगे, जैसे पञ्चशिख आदिके, वे आज अविकल रूपमें उपलब्ध नहीं हैं। फिर मध्यकालमें सांख्यकी अध्ययनाध्यापन परम्पराके नष्टप्राय होजानेसे अनेक सदियोंतक इस विषयपर कोई मार्केके ग्रंथ न लिखे गये हों, यह भी संभव है। इसलिये यह युक्ति कि अनिरुद्धसे पूर्व षडध्यायीपर कोई भाषण नहीं मिलता, इसलिये षडध्यायीका अस्तित्व भी संदिग्ध है, कोई बल नहीं रखती।

वर्तमान कणाद-वैशेषिक सूत्रोंपर भी शंकरमिश्रकृत उपस्कारसे पूर्व, कोई व्याख्याग्रंथ उपलब्ध नहीं होता; शंकरमिश्रका समय तेरहवीं शताब्दीसे पूर्वका नहीं है, तो क्या वैशेषिक सूत्रोंको भी इसी समयका माना जाना चाहिये? प्रशस्तपादकृत पदार्थ धर्मसंग्रहको सूत्रोंकी व्याख्या नहीं कहा जा सकता। यदि उसको भी आप वैशेषिक सूत्रोंका व्याख्यान ही मानते हैं, तो पञ्चशिख आदिके ग्रन्थोंको षडध्यायीका व्याख्यान क्यों नहीं माना जा सकता? इसलिये किसी नियत समयसे पूर्व, किसी ग्रन्थके केवल व्याख्यानका न मिलना, ग्रन्थके अस्तित्वका बाधक नहीं कहा जा सकता।

(२) कपिलप्रोक्त शास्त्र अतिसंक्षिप्त था। यह (षडध्यायी) विस्तृत है। सांख्यकारिका (७०) की व्याख्या जयमंगलामें भी कपिल-शास्त्रको संक्षिप्त लिखा है।

समाधान- इस सम्बन्धमें हमने थोड़ा निर्देश प्रथम कर दिया है। यदि संक्षिप्त होनेके कारण 'तत्त्वसमास' को ही कपिलकी कृति माना जाय, तो ईश्वरकृष्णका वर्णन, जो उसने सांख्यसप्ततिकी अन्तिम उपसंहारात्मक चार आर्याओंमें किया है, सर्वथा असंगत हो जाता है, क्योंकि इन

सूत्रोंका सांख्यसप्ततिसे न आर्थिक सामञ्जस्य है, और न सांख्यसप्ततिको इन सूत्रोंका संक्षेप ही कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त जहांतक संक्षेप और विस्तारका सम्बन्ध है, ये आपेक्षिक शब्द हैं। एक संक्षिप्त लेख भी दूसरेकी अपेक्षा विस्तृत कहा जा सकता, और विस्तृत लेख संक्षिप्त कहा जा सकता है। वर्तमान षडध्यायीमें ५२७ सूत्र हैं, जिनमें लगभग ७७ सूत्र निश्चित ही कपिलकी रचना नहीं है। अनन्तर कालमें इन सूत्रोंका प्रक्षेप किया गया है। इनके प्रक्षेपका काल भी उन्हीं सूत्रोंके आधारपर निश्चित+ हो जाता है, ऐसी स्थितिमें षडध्यायीके ४५० सूत्र कपिलकी रचना है। इतने महान और गम्भीर अर्थोंका प्रतिपादन करनेके लिये इतनी सूत्रसख्याको अधिक विस्तृत नहीं कहा जा सकता। जयमगलामें पञ्चशिखके विशाल तथा अति विस्तृत व्याख्यानोंकी अपेक्षासे ही इन सूत्रोंको संक्षिप्त कहा गया है। वहां 'संक्षिप्त' पदके निर्देशसे 'तत्त्वसमास' सूत्रोंको समझना सर्वथा असगत होगा। मूलकारिकाके 'बहुधा कृतं तन्त्रम्' पदोंका अर्थ जयमगला व्याख्यामें ही इस प्रकार किया गया है— 'षष्टितन्त्राख्यं षष्टिखण्ड कृतमिति,' मूलके 'तन्त्रम' पदका अर्थ 'षष्टितन्त्राख्यम्' है। इससे स्पष्ट होता है, कि कपिलकी रचनाका नाम 'षष्टितन्त्र' था। यह वही 'षष्टितन्त्र' है, जिसका संक्षेप ईश्वरकृष्णने आर्याओंमें किया है। आगे मूलके 'बहुधा' पदका अर्थ जयमंगलामें 'षष्टिखण्डम्' किया है। तथा 'कृतम्' पदको उसी तरह रख दिया है। षष्टितन्त्रके एक एक अर्थको लेकर पञ्चशिखने उसका व्याख्यान किया, उतने अंशका एक खण्ड समझा गया। इस प्रकार उस एक ही कपिल षष्टितन्त्रके पञ्चशिखकृत व्याख्यानभूत साठ खण्ड हो गये। अब यदि 'तत्त्वसमासको, ही कपिल 'षष्टितन्त्र' माना जाय, तो ईश्वरकृष्णके द्वारा उसका संक्षेप किया जाना सम्भव न होना, एक असमाधेय आपत्ति है। अतः वस्तुस्थिति यह है, कि षडध्यायी ही कापिल 'षष्टितन्त्र' है, उसीका संक्षेप ईश्वरकृष्णने किया है, जो दोनोंकी तुलनासे अतिस्पष्ट है, तत्त्वसमास, षडध्यायीका विषय सूचीमात्र है, इसमें संक्षेप विस्तार रूपसे द्विविध तन्त्रके प्रवचनकी कल्पना करना नितान्त असंगत है।

(२) [ख] सूत्र ५।१२३ का 'स्मृतेश्च' पाठ स्मृति कालके बाद इसकी रचनाका होना सिद्ध करता है। कापिलका काल इससे पूर्व है, अतः यह तत्प्रणीत नहीं हो सकता।

समाधान– पिछले पृष्ठोंमें हम लिख चुके हैं, कि षडध्यायीमें कुछ स्थल प्रक्षिप्त हैं। ऐसे ही स्थलोंमेंसे एक ५।१२० से ५।१२३ तक का है। हम इसके विशेष विवेचनमें इस समय नहीं जाते। जो विद्वान् इस विषयको विस्तारपूर्वक देखना चाहें, वे 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रन्थसे देख सकते हैं। पर यहां हम इतना अपनी ओरसे कह देना चाहते हैं, कि विद्वान् लेखकने जो विशेषरूपसे 'स्मृतिकाल' का निर्देश किया है, क्या 'स्मृतिकाल' कोई ऐसा सीमित समय है, जो किसी एक बिन्दुसे प्रारम्भ होकर कहीं समाप्त हो जाता है? हमारा ऐसा विचार है, कि लेखक महानुभावने यह आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंकी निराधार कल्पनाका अन्धानुकरणमात्र किया है। अन्यथा क्या कोई ऐसा समयविशेष बतलाया जा सकता है? जिसे 'स्मृतिकाल' कहा जा सके। स्थूलरूपसे यह समझा जाता है, कि जिस समयमें स्मृतिग्रन्थ बनाये जाते रहे हैं, वही काल 'स्मृतिकाल' कहा जा सकता है। परन्तु हमारा निवेदन है, कि ऐसा कोई भी कालविशेष निर्धारित नहीं किया जा सकता। यदि 'स्मृति' पदसे लेखकका अभिप्राय मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ही है, तो इन स्मृतियोंका रचनाकाल भी आजतक सर्वात्मना निर्णीत नहीं किया जा सका है। और इस प्रकारकी अनेक स्मृतियां बहुत अनन्तर कालतक बनती रही हैं, तथा कुछका निर्माण आज भी हो रहा है।

यदि किसी तरह 'स्मृतिकाल' का निश्चय भी हो जाये, तो अन्य दर्शन सूत्रोंमें भी इस पदके प्रयोगका सामञ्जस्य करना होगा। व्यासरचित वेदान्त ब्रह्मसूत्रोंमें अनेक स्थलों पर 'स्मरन्ति च' 'स्मर्यते च' 'स्मृतेश्च' आदि पदोंका प्रयोग हुआ है। फिर प्राचीन साहित्यमें मनुकी जैसी रचनाओंके सदृश रचनाओंके लिये ही 'स्मृति' पदका प्रयोग किया गया हो, ऐसा नहीं है। ब्रह्मसूत्रोंमें ही कपिलकी रचनाके लिये भी 'स्मृति' पदका प्रयोग [२।१।१] किया गया है, जो शुद्ध दार्शनिक रचना है। उस पदके

+ इसके लिये देखिये– 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रन्थका 'षडध्यायीकी रचना' नामक प्रकरण। इस ग्रन्थका प्रकाशन–विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर, जिला–सहारनपुर, उत्तर प्रदेश–ने किया है।

व्याख्याकारोंने वहां 'स्मृति' पदका प्रयोग, कपिलके रचित 'तन्त्र' अथवा 'षष्टितन्त्र' के लिये ही समझा है। तब कपिलकालको भी स्मृतिकाल क्यों नहीं कहा जा सकता? वस्तुतः इस प्रकारके कालोंकी कल्पना, आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंकी सर्वथा निराधार मनघडन्त दौड़ोंका ही परिणाम है। अन्धेकी लाठीके प्रयोगके अतिरिक्त इनको और कुछ नहीं कहा जा सकता।

(३) श्री वाचस्पति मिश्रने इन सूत्रों अथवा सूत्रोंके किसी भाष्यपर कोई टीका नहीं लिखी, जब कि उसने अन्य सब दर्शनों पर टीकाग्रन्थ लिखे हैं। सांख्यसप्ततिपर उनकी टीका मिलती है। यदि टीका नहीं लिखी थी, तो कमसे कम षडध्यायीके किसी सूत्रको उद्धृत ही किया होता। इससे यही ज्ञात होता है, कि उनके समयमें ये सूत्र विद्यमान न थे। इनकी रचना वाचस्पति मिश्रके अनन्तर कालमें हुई है।

समाधान– वाचस्पति मिश्रने साक्षात् दर्शनसूत्रोंपर कोई टीकाग्रन्थ नहीं लिखा। सूत्र भाष्योंपर या उनके भी आगे व्याख्याग्रन्थोंपर टीका लिखी है। कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। सम्भव है, कि उस समय सांख्यसूत्रोंपर कोई प्राचीन व्याख्याग्रन्थ उपलब्ध न होनेसे सांख्यसप्ततिको ही व्याख्याके लिये चुना हो। पर उस व्याख्यामें किसी भी सूत्रका उद्धरण न दिया जाना खटकता अवश्य है। परन्तु उस समय सूत्रोंकी अविद्यमानतामें यह इतनी प्रबल युक्ति नहीं कही जा सकती। क्योंकि वाचस्पतिसे भी प्राचीन ग्रन्थोंमें षडध्यायी सूत्रोंके उद्धरण उपलब्ध होते हैं। वाचस्पतिके द्वारा किसी भी सूत्रके उद्धृत न किये जानेका कोई विशेष कारण तो हम नहीं बतला सकते, पर यह भी संभव है, कि उस कालमें पठनपाठन परम्परामें इन सूत्रोंका प्रचार नष्टप्राय हो, और वाचस्पति इनको उपलब्ध न कर सका हो।

सूत्रोंकी विद्यमानता और जानकारी होनेपर भी यह आवश्यक नहीं, कि सूत्रका उद्धरण अवश्य दिया जाना चाहिये था, और न दिये जानेसे उस समय सूत्रोंकी अविद्यमानता मान ली जाय। यह स्पष्ट है, कि षडध्यायीके व्याख्याकार अनिरुद्धसे पूर्व सांख्यसप्तति विद्यमान थी। यह भी कहना कठिन होगा, कि सांख्यसप्ततिसे वह अपरिचित था। पर उसने अपने व्याख्याग्रन्थमें कहीं भी सांख्यसप्ततिका उल्लेख नहीं किया, और न किसी आर्या अथवा आर्याके अंशको अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है। क्या इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं, कि अनिरुद्धके समय सांख्यसप्तति अविद्यमान थी, या उसके अनन्तर सांख्यसप्ततिकी रचना की गई? ठीक यही स्थिति षडध्यायी सूत्र और वाचस्पतिके सम्बन्धमें कही जा सकती है।

(४) श्री शंकराचार्यने शारीरिक भाष्यमें षडध्यायी सूत्रोंको उद्धृत नहीं किया, कारिकाको उद्धृत किया है।

समाधान– वेदान्त ब्रह्मसूत्रोंके शंकराचार्यकृत शारीरिक भाष्यमें हम षडध्यायी सूत्रोंके उद्धरणोंका निर्देश इसी लेखमें प्रथम कर चुके हैं।

(५) षडध्यायी सूत्रोंमें पञ्चशिख और सनन्दनका उल्लेख है, तथा 'आचार्याः' कहकर सांख्य अथवा अन्य मतोंका उल्लेख किया गया है। पञ्चशिख और सनन्दनके मतका उल्लेख होनेसे यह सिद्ध है, कि यह ग्रन्थ उनके बाद बना है। परमर्षि कपिलने आसुरिको सांख्यशास्त्र पढ़ाया, तथा आसुरिने पञ्चशिखको। जब पञ्चशिखको शास्त्रका ज्ञान भी न था, तब उसका मत, उसके गुरु आसुरिको कपिल कैसे पढ़ा सकते थे। अतः षडध्यायीको कपिल रचित कहना हास्यास्पद प्रतीत होता है।

समाधान– प्राचीन साहित्यसे ज्ञात होता है, कि सनन्दन, कपिलके समकालिक अथवा उनसे कुछ पूर्ववर्त्ती ही रहे होंगे। उनके नामसे उद्धृत एक सन्दर्भ भी उपलब्ध होता है, और उसमें प्रतिपादित अर्थ दर्शन-विषयके साथ सम्बन्ध रखता है। यह संभव है, कि सनन्दनकी भी कोई रचना रही हो। कपिलके ग्रन्थमें सनन्दनके मतका उल्लेख, असामञ्जस्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता। दो [५।३१।६।३०] सूत्रोंमें 'आचार्या' कहकर मतका निर्देश किया गया है। इन सूत्रोंकी व्याख्या, उपलभ्यमान व्याख्याग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे की गई है। हम उसकी विवेचनामें इस समय नहीं उतरना चाहते; परन्तु यह निर्णय करना अशक्य है, कि वह कौनसे आचार्य अथवा आचार्योंका मत है। किसी विचारके अनिर्दिष्टप्रवक्तृक होनेकी अवस्थामें भी ऐसा उल्लेख किया जा सकता है। कपिलके द्वारा इस प्रकारके विचारका निर्देश किया जाना असंगत क्यों? सांख्याचार्योंकी परम्परामें जिन व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख सांख्यग्रन्थोंमें किया गया है, वे सब कपिलकी अपेक्षा अर्वाचीन कहे जा

सकते हैं, परन्तु उनमेंसे किसीके साथ, उक्त मतका सम्बन्ध जोडा जाना अशक्य है। कपिलके समय या उससे पूर्व किसी भी विद्वान् या विद्वानों द्वारा उस प्रकारके विचारका माना जाना, स्वीकार करनेमें क्या आपत्ति हो सकती है? उसीका निर्देश कपिलने अपने ग्रन्थमें किया है।

कपिलके ग्रन्थमें पंचशिखका उल्लेख आपाततः अधिक असमञ्जस प्रतीत होता है। यह ठीक है, कि जब कपिलने सांख्यशास्त्रका उपदेश आसुरिको दिया, उस समय वह पंचशिखके मतका उल्लेख आसुरिके सन्मुख नहीं कर सकता था, और न उसने ऐसा किया ही होगा। परंतु इन्हीं एक या दो सूत्रोंमें तो संपूर्ण शास्त्रका उपदेश नहीं है? पंचशिखके नामसे दिये गये मतके अतिरिक्त शेष सपूर्ण शास्त्रका उपदेश कपिलके द्वारा आसुरिको दिये जानेमें क्या आपत्ति हो सकती है? आसुरिने जब वही शास्त्र पंचशिखको पढाया, वह मेधावी प्रतिभा सम्पन्न छात्र था, केवल यथाश्रुत पाठक नहीं, तब उसने कुछ विचारोंमें अपना मतभेद प्रकट किया। यह संभव है, कपिल उस समयतक जीवित हों और प्रशिष्यकी ऐसी चमत्कारिणी प्रतिभासे प्रसन्न होकर उन्होंने अपने अपने ग्रथमें उसके विचारोंको उसीके नामपर देना सहर्ष स्वीकार किया हो। यह इतना असमाधेय असामजस्य नहीं है, जिसके कारण संपूर्ण शास्त्रको ही कपिलकी कृति माननेसे नकार कर दिया जाय। पंचशिखके इस विचार-विभेदके प्रकाशमें आनेके समय यदि कपिलकी उपस्थिति न भी हो, तो भी उसके विचारका इस रूपमें ग्रन्थके अदर आजाना कुछ अधिक आपत्तिजनक नहीं हैं। यह सभव है आसुरिने अपने गुरुके ग्रन्थमें, अपने शिष्यके इन प्रतिभाजनित विचारोंको उसकी प्रसन्नता व उत्साह वृद्धिके लिये इस प्रकार सन्निविष्ट कर दिया हो। ऐसी स्थितिमें हम यह अवश्य कह सकते हैं, कि कपिलके अनन्तर उसके ग्रंथमें इन विचारोंका सन्निवेश किया गया।

इस प्रकारकी प्रवृत्ति अन्य सूत्रग्रथोंमें भी देखी जाती हैं। यह निश्चित है, कि बादरायण व्यासने वेदान्त ब्रह्म सूत्रोंकी रचना की है। इस बातमें भी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, कि यह शास्त्र उसने अपने शिष्योंको पढाया होगा। बादरायण व्यासके प्रधान शिष्योंमें जैमिनी भी एक था। जेमिनिने अपने गुरुसे सब शास्त्र तत्वोंको जानकर अपने एक नूतन शास्त्रकी रचना की। इस बातसे कोई विद्वान् नकार नहीं कर सकता, कि वेदान्तसबंधी विचारोंमें जैमिनिका कई स्थलोंपर मतभेद है, और उनका निर्देश वर्तमान ब्रह्मसूत्रोंमें उपलब्ध होता है। क्या इस स्थितिका यह अभिप्राय निकालना होगा, कि जब बादरायण व्यास, अपने शिष्य जैमिनिको इस शास्त्रका अध्ययन करा रहे थे, उस समय उन्होंने अपने उस शिष्यके विचारोंका भी उसीको अध्ययन कराया होगा! कदाचित् ऐसा स्वीकार करना कठिन होगा। यहां भी यही संभव हो सकता है, बादरायण व्यासने अपने शिष्य जैमिनिके भिन्न विचारोंको उसकी प्रसन्नता अथवा उत्साह वृद्धिके लिये बादमें अपने ग्रंथमें सन्निविष्ट कर दिया होगा। यही स्थिति सांख्यके संबंधमें भी है।

वस्तुत. कोई भी ग्रथकार, इस प्रकारके ग्रंथोंकी रचना पूरी हो जानेपर भी, जबतक वह जीवित रहता है, उसमें न्यूनाधिकता या अन्य परिवर्तन परिवर्द्धन करता ही रहता है। आजकल मुद्रण कालमें, जहां लेखक रचना-प्रकाशनके लिये लालायित भी अधिक रहता है, कदाचित् इसमें कठिनता रहती है; या कमसेकम द्वितीय प्रकाशन तक प्रतीक्षा करनी पडती है, पर जिस समयके संबंधमें हम बात कर रहे हैं, तब यह सब कुछ न था, और उस समय अपने शिष्य व प्रशिष्योंतकके विशिष्ट विचारोंका उनके अपने मूल ग्रंथोंमें सन्निवेश किया जाना, अधिक असमजस नहीं कहा जा सकता। उनका अपना समय था हमारा अपना है। अपनी तुलासे उनके भावोंको तोलना, उनके साथ अन्याय होगा। कदाचित् उन्हें ज्ञान होता, कि ऐसा करनेसे सुदूर भविष्यत्में उन्हे अपनी कृतिसे भी हाथ धोना पडेगा, तो अवश्य वे अपनी इन चेष्टाओंसे भयभीत होते, और ऐसा पग न बढाते।

(६) इसमें न्याय, वैशेषिक, नवीन वेदान्त, जैन, पाशुपत, बौद्ध, चार्वाक आदिके सिद्धान्तोंका उल्लेख कर खण्डन किया गया है। अतः यह ग्रन्थ इन सबके पीछेका प्रतीत होता है, अत यह आधुनिक है। आदि विद्वान् रचित नहीं हो सकता।

समाधान= हम इस लेखमें यह संकेत प्रथम कर आये हैं, कि इन षडध्यायी सूत्रोंमें कुछ प्रक्षिप्त अंश अवश्य

है। कदाचित् यह कहा जा सकता है, कि षडध्यायी सूत्रोंमें इनकी अर्वाचीनताको सिद्ध करनेवाले जो स्पष्ट साधन उपलब्ध होते हैं, इन्हींको यदि प्रक्षिप्त कह दिया जाय, तो इससे यथार्थताका निर्णय नहीं किया जा सकता। तब तो अनेक अर्वाचीन ग्रन्थोंको प्राचीन सिद्ध किया जा सकता है। जो साधन उनमें अर्वाचीनताके साधक उपलब्ध हों, उन्हींको प्रक्षिप्त कह देना साधारण बात है। परन्तु यह कहना ठीक न होगा। किसी भी ग्रन्थके प्रक्षिप्त अंशको बतलानेके लिये सुपुष्ट युक्तिपूर्ण साधनोंका होना आवश्यक है। जहांतक षडध्यायी सूत्रोंमें प्रक्षेपका प्रश्न है, हम ऐसे कुछ साधनोंका यहां उल्लेख करेंगे।

वैसे तो कई जगह छोटे मोटे प्रक्षेप हैं, पर दो ऐसे विशेष स्थल हैं, जहां पर्याप्त लम्बे प्रक्षेप हैं। एक स्थल पहले अध्यायमें २० वें सूत्रसे ५४ वें सूत्रतक है। इस अंशके प्रक्षिप्त होनेमें प्रबल प्रमाण इन सूत्रोंकी रचना और उनका अर्थकृत सम्बन्ध है। ७ वें सूत्रसे १८ वें सूत्रतक नित्यमुक्त आत्माके-अवास्तविक अथवा पूर्वपक्ष रूपसे—बन्धकारणोंका निर्देश किया गया है, और साथ ही साथ उन बन्ध कारणोंका परिहार भी कर दिया गया है। इसके अनन्तर १९ वें सूत्रमें सिद्धान्त पक्षसे नित्य मुक्त आत्माके बन्ध-कारणका उल्लेख है। सूत्रके शब्द इसप्रकार हैं-

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते।

इस सूत्रमें दो बार 'तद्योग' पद आया है। इसमें प्रथमान्त 'तद्योग' पदका अर्थ है- 'बन्धयोग' तथा दूसरे पञ्चम्यन्त 'तद्योग' पदका अर्थ है- प्रकृतियोग'। सब व्याख्याकारोंने इन पदोंका यही अर्थ किया है, और यही अर्थ सम्भव है। इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्रका अर्थ होता है- नित्यमुक्त आदि स्वभाववाले आत्माका बन्धयोग, प्रकृतियोगके बिना नहीं हो सकता। अर्थात् प्रकृतियोग ही नित्यमुक्त आत्माके बन्धका कारण है। इस सिद्धान्तकी स्थापना पर स्वभावतः यह आशङ्का होती है, कि नित्यमुक्त आत्माका प्रकृतिके साथ योग ही क्यों होता है? इसका उत्तर सूत्रोंकी वर्त्तमान संख्याके अनुसार ५५ वें सूत्रमें दिया गया है। उस सूत्रका पाठ इस प्रकार है—

तद्योगोऽपि अविवेकात्।

अर्थात् नित्यमुक्त आत्माका प्रकृतिके साथ योग भी अविवेकके कारण होता है। इन दोनों सूत्रोंकी शाब्दिक रचना और अर्थकृत सम्बन्ध परस्पर इतने अधिक सम्बद्ध है, कि अपने मध्यमें अन्य किसी शब्द या अर्थको सहन नहीं करते। कोई भी व्याख्याकार ५५ वें सूत्रका अर्थकृत सम्बन्ध ५४ वें सूत्रके साथ जोड़नेमें समर्थ नहीं हो सका। और १९ वें सूत्रमें 'तद्योगः' पद तथा वही 'तद्योग' ५५ वें सूत्रमें, दोनों अपनी शाब्दिक अव्यवहित एकताको पुकार पुकार कर कह रहे हैं। इस प्रकार २० से ५४ तक यह ३५ सूत्रोंका इकठ्ठा ही प्रक्षेप निर्धारित होता है, इसी प्रकरणमें न्याय, वैशेषिक, जैन, बौद्ध आदिके उपर्युक्त प्रसंग हैं।

इस प्रक्षिप्त अंशके २८ वें सूत्रमें पाटलिपुत्र और स्रुघ्न नामक नगरोंका उल्लेख, इस बातकी घोषणा कर रहा है, कि इन सूत्रोंका अथवा इस प्रकरणका प्रक्षेप, मुख्य ग्रन्थके अन्दर उसी समय किया गया होगा, जब ये दोनों नगर अपने वैभव और महत्ताके कारण उन्नतिके शिखरपर वर्तमान थे। इतिहाससे यह सिद्ध है, कि ये दोनों नगर कबसे कबतक उन्नतिकी शिखरपर रहे। इस प्रकारके अर्थोंका निर्देश करनेके लिये कोई भी विद्वान् लेखक अपने समयके प्रसिद्ध नगरोंका ही उल्लेख कर सकता है। यदि आज हम देश भेदको बतलानेके लिये किन्हीं स्थानोंका निर्देश करें, तो कौशाम्बी और विदिशाका नाम नहीं लिखेंगे, प्रत्युत देहली प्रयाग या कलकत्ता बम्बई आदिका ही नाम लिखेंगे। इतिहाससे यह सिद्ध है, कि ईसाकी चौथी शताब्दिके पूर्व ही ये नगर विध्वस्त हो चुके थे। उससे पूर्व ही इन सूत्रोंके प्रक्षेपका समय निर्धारित किया जा सकता है। जो विद्वान् सम्पूर्ण षडध्यायी सूत्रोंकी रचनाको ही ईसाकी १४ वीं शताब्दिके अनन्तरकी बतलाते हैं, वे जरा ध्यानपूर्वक इसपर विचार करें। जब इन प्रक्षिप्त सूत्रोंका रचनाकाल, ईसाकी पांचवीं शताब्दीसे पूर्व ही संभव हो सकता है, तब मूल ग्रन्थकी रचनाको १४ वीं शताब्दिके अनन्तर बताना कैसी विडम्बना है।

दूसरा लम्बा प्रक्षेप पांचवें अध्यायमें है। यह ८४ वें सूत्रसे लगाकर ११५ वें सूत्रतक कुल ३२ सूत्रोंका है। हम इसके सम्बन्धमें अधिक विस्तारसे यह लिखना नहीं चाहते। लेख अधिक लम्बा होता जा रहा है। इसलिये जो विद्वान्

इस सम्बन्धमें अधिक विवेचन देखना चाहें, वे पं० उदयवीर शास्त्री विद्याभास्करके 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रन्थमें देख सकते हैं। अब हम अन्तिम सातवें आक्षेपका समाधान करके इस लेखको यहीं समाप्त कर देना चाहते हैं।

(७) सूत्रोंकी रचना कारिकाके ढांचेमें ढली है। उदाहरणके लिये- हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् (सांख्य सूत्र १।१२४), और सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च (२।३१) ये दो सूत्र, कारिका १० और २९ से ज्योंके त्यों मिलते हैं। कारिका २५ का पूर्वार्ध है- सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्, इसके स्थानपर सूत्र २।१८ है- सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात्, इसमें केवल पुंनपुंसकका भेद है। क्रिया का मध्यमें आना छन्दोरचनाके लिये कारिकाकारको अभीष्ट था न कि सूत्रकारको। अतः यह कारिकाकी नकल है।

समाधान= उपर्युक्त उदाहरण सूत्रोंके कारिका रूप होनेके सम्बन्धमें थोडा प्रकाश डालनेके पूर्व, हम साधारण रूपसे इस बातपर विचार कर लेना चाहते हैं, कि सूत्रोंकी रचना कारिकाके ढांचेमें ढली है या नहीं ? आक्षेपकर्ता विद्वान् लेखकने यह स्पष्ट लिखा है, कि कारिका रूप सूत्र, ईश्वरकृष्णकी सांख्य सप्ततिसे नकल किये गये हैं। थोडी देरके लिये इस स्थापनाको सत्य मानकर हम आगे विचार करते हैं। जिन विद्वानोंने षडध्यायी सूत्रोंके साथ सांख्य सप्ततिकी गंभीरतापूर्वक तुलना की है, उनके सामने यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है, कि सपूर्ण सांख्यसप्ततिमें जिन विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, वे षडध्यायीके प्रथम तीन अध्यायोंमें समाप्त हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह निकलता है, कि यदि षडध्यायीके रचयिताने सांख्य सप्ततिकी रचनाकी नकल की है, तो वह प्रथम तीन अध्यायोंमें ही नकल कर सकता था। इसका परिणाम यह होता, कि षडध्यायीके प्रथम तीन अध्यायोंमें ही सूत्रोंकी कारिका रूप हो सकती थी, अन्तिम तीन अध्यायोंमें ऐसा होना असम्भव था। परन्तु हम अन्तिम तीन अध्यायोंमें भी कुछ सूत्रोंको कारिका रूप या छन्दोबद्ध रचनाके रूपमें देखते हैं। जैसे-

(क) तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् (४।१६) यह आर्या छन्दका चतुर्थ चरण है।

(ख) सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः (५।७०) यह अनुष्टुप्का एक चरण है।

(ग) निजधर्माभिव्यक्तेर्वा वैशिष्ट्यात्तदुपलब्धेः (५।९५) यह आर्याच्छन्दका द्वितीय अर्द्धभाग है।

(घ) ध्यानं निर्विषयं मनः (६।२५) यह अनुष्टुप् छन्दका एक चरण है।

(ङ) पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः (६।४५) यह आर्याच्छन्दका चतुर्थ चरण है।

इन सब निर्देशोंके आधारपर यह परिणाम स्पष्ट होता है, कि ग्रन्थकारकी स्वभावतः ऐसी प्रवृत्ति है, कि कोई सूत्रात्मक रचना भी पद्यमय हो गई है। यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण ग्रन्थमें आद्योपान्त समानरूपसे देखी जाती है। अन्यथा अन्तिम तीन अध्यायोंके लिये किसी अन्य छन्दोबद्ध आधारभूत ग्रन्थकी कल्पना करनी पडेगी। यदि यह रचना स्वतन्त्र ही मानी जाती है, तब प्रथम भागकी रचनाको भी स्वतन्त्र माननेमें क्या आपत्ति हो सकती है ?

ईश्वरकृष्णने स्वयं अपनी अन्तिम कारिकामें लिखा है, कि मैंने अपने ग्रन्थमें प्रतिपाद्य सब अर्थोंको षष्टितन्त्रसे लिया है, तथा उसकी आख्यायिका और परवादोंको छोड दिया है। हम देखते हैं, कि ठीक इस वर्णनके अनुसार षडध्यायीके प्रथम तीन अध्यायोंमें सब प्रतिपाद्य अर्थ समाप्त हो जाते हैं, उसके अनन्तर चतुर्थ अध्यायमें आख्यायिका और पांचवें छठेमें परवादोंका उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है, कि ईश्वरकृष्णने इसी षडध्यायीसे अपने ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयको लिया है। उसने इस बातका पूरा यत्न किया है, कि मूलग्रन्थके शब्द, जहांतक हो सके, कारिकाओंमें उसी रूपमें आ सकें। यही कारण है, कि सूत्र और कारिकाके शब्दोंकी इतनी अधिक समानता है।

जिन तीन सूत्रोंको कारिकाकी समानता दिखलानेके लिये ऊपर उद्धृत किया गया है, उनमेंसे एक सूत्रके सम्बन्धमें हम इसी लेखमें प्रथम संकेत कर चुके हैं। वेदान्त ब्रह्मसूत्र [२।४।९] के शांकरभाष्यमें इस सांख्यसूत्रको उद्धृत किया गया है, वहां जो पाठ दिया गया है, वह कारिकारूप कदापि संभव नहीं है। सूत्रके पाठमें ' सामान्याकरणवृत्तिः ' यह असमस्त पाठ था। यही वास्तविक सूत्रपाठ था। कारिकाकारने इसे छन्दोरूप देनेके लिये समस्त पाठ

बना दिया। परन्तु शंकराचार्यने सूत्रके वास्तविक असमस्त पाठको ही उद्धृत किया है। अनन्तर कालमें लेखकों अथवा पाठकोंने सूत्रके असमस्त पाठको कारिकाके अभ्यासवश कारिकानुसारी बना दिया। परन्तु शांकरभाष्यमें उद्धृत सूत्रका वास्तविक पाठ आज भी वैसा ही उपलब्ध होता है। कारिकाके अभ्यासवश, आजके हिन्दी अनुवादकोंने शांकरभाष्यके पाठको भी किस प्रकार भ्रष्ट किया है, इसका संकेत इसी लेखमें हम पूर्व कर चुके हैं।

इसी प्रकार 'हेतुमदनित्य' इत्यादि सूत्रके वास्तविक पाठमें 'अव्यापि' पद नहीं था, इस कारण उसे कारिकाका रूप या नकल कहना सर्वथा असंगत है। अनिरुद्धके समय तक इस सूत्रमें 'अव्यापि' पद नहीं जोड़ा गया था, यह उसके व्याख्याग्रन्थसे स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि अनिरुद्धसे बहुत पूर्व, ईश्वरकृष्णने इस सूत्रको कारिकाका रूप देनेके लिये उसमें 'अव्यापि' पद जोड़ दिया था। अनिरुद्धके अनन्तर, कारिकाके अभ्यासवश किसी लेखक या पाठकने सूत्रपाठमें भी 'अव्यापि' पदको जोड़ दिया। वस्तुतः सूत्र अपने मूलरूपमें कारिका रूप नहीं कहा जा सकता।

उदाहरणके लिये प्रस्तुत तीसरे सूत्रमें केवल पुंनपुंसकका भेद है। परन्तु यह इतना भेद ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यदि सूत्रकार कारिकाकी ही नकल करता, तो उसे पुल्लिंग पाठ देनेमें भी कोई रुकावट नहीं थी। यह कहना, कि कारिकासे थोड़ा हेरफेर करनेके लिये ही लिंगभेद कर दिया होगा, एक दुर्बल बात है; क्योंकि ऐसा हेरफेर भी किस कामका, जिसमें छन्दोरूप भी छिपाया न जा सका। वस्तुस्थिति यह है, कि षडध्यायीके इस प्रसंगमें इन्द्रियों अथवा करणका प्रतिपादन है। उसीको विशेष्य पद मानकर सूत्रमें नपुंसक निर्देश किया गया है। परन्तु कारिकामें छन्दोरचनासे बाध्य होकर 'इन्द्रिय' अथवा 'करण' पदका सन्निवेश नहीं किया जा सका। उनके स्थानपर 'सर्गाः' पदका निर्देश किया गया है, और उसीके अनुसार आर्यामें, सूत्रके नपुंसक पाठको बदलकर उन पदोंका पुल्लिंगमें प्रयोग किया गया है।

'प्रवर्तते' क्रियापदका सूत्रके मध्यमें रक्खा जाना कोई इतना अधिक असामञ्जस्यपूर्ण नहीं है। केवल छन्दकी दृष्टिसे नहीं, अर्थ-पूर्णताकी दृष्टिसे भी क्रियाका निर्देश किया जा सकता है, यह ग्रन्थकारकी अपनी इच्छापर निर्भर है, वह क्रियापदका निर्देश आदि अन्त अथवा मध्यमें कहीं भी कर दे। अन्य अनेक सूत्रोंमें इसी प्रकार क्रियापदका निर्देश किया गया है। कदाचित् यह भी सम्भव हो सकता है, कि मूल सूत्रमें क्रियापद न रहा हो, अनन्तर कालमें लेखकों अथवा पाठकोंने अन्य सूत्रोंमें परिवर्तनके समान यहां भी कारिकाके अभ्यासवश क्रियापदका सन्निवेश कर दिया हो।

लेखमें इस तरहके और भी सन्दर्भ दिये गये हैं, जिनमें सूत्र और कारिकाकी समानता दिखाई गई है। इसका कारण यही प्रतीत होता है, कि षष्टितन्त्रके आधारपर अपनी आर्याओंकी रचना करनेवाले ईश्वरकृष्णने, मूल ग्रन्थके शब्दोंको- जहांतक हो सके- अपनी रचनामें सन्निविष्ट करनेका पूरा प्रयत्न किया है। इस तुलनासे यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि षडध्यायीका ही अपर नाम 'षष्टितन्त्र' है, जिसके आधारपर ईश्वरकृष्णने सांख्यकारिकाकी रचना की है। वस्तुस्थितिको न समझकर युरोपीय विद्वानोंने इस बातका निराधार हल्ला मचाया, कि ये सूत्र अर्वाचीन हैं, कपिलकी कृति नहीं हैं, एवं चौदहवीं शताब्दीके अनन्तर किसी अज्ञात व्यक्तिने कारिकाओंके आधारपर इन सूत्रोंकी रचना कर डाली है। इस समय अनेक भारतीय विद्वान् भी पाश्चात्य विद्वानोंका इस विषयमें अन्धानुकरण कर रहे हैं। हम आशा करते हैं, विद्वान् इन पंक्तियोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

अन्तमें हम यह निवेदन कर देना चाहते हैं, कि हमारी इन पंक्तियोंका पूर्ण आधार श्री प० उदयवीरशास्त्री विद्याभास्करका 'सांख्यदर्शनका इतिहास' नामक ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन 'विरजानंद वैदिक संस्थान, ज्वालापुर, जि० सहारनपुर' से हुआ है। इन्हीं दिनों हमें यह ग्रन्थ देखनेको मिला। 'वैदिक धर्म' का लेख हमारे सन्मुख था। उन विचारोंसे प्रेरित होकर ही हमने ये पंक्तियां लिख दी हैं, आशा है, विद्वान् इसपर विचार कर हमारे लिये सन्मार्गका प्रदर्शन करेंगे।

आदि मनुष्योत्पत्ति कब, कहां और कैसे हुई ?

लेखक— विद्याभूषण श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा गौर, साहित्याचार्य शाहदरा देहली।

(१) आदि मनुष्योत्पत्ति कब हुई ?

वर्तमान प्रचलित आर्य ज्योतिषशास्त्रकी गणनानुसार ता. १५ सितम्बर १९५२ ई० से १९७२९४९०५३ वर्ष पूर्व इस वर्तमान सृष्टिकल्पकी रचना आरम्भ हुई थी। अर्थात् वर्तमान सृष्टीको बने हुए— १९७२९४९०५३ वर्ष बीत गये और शेष २३४७०५०९४७ वर्षोंकी समाप्तिपर इस वर्तमान सृष्टिका प्रलय हो जायेगा। क्योंकि सृष्टिकी सम्पूर्ण आयु— ४३२०००००००० वर्षकी ही है। आदि सृष्टिमें और प्रत्येक मन्वन्तरके आदि अन्तमें १७२८००० वर्षोंका संधि समय भावी भौतिक सृष्टिके निर्माणकी तैयारीमें बीतता है। इस प्रकार यदि आदिके १७२८००० वर्षोंको छोड भी दिया जाय तो भी यह सर्वथा ही सिद्ध है कि— आदि मनुष्योत्पत्ति आज— १५-११-५३ से १९७१२-२१०५३ वर्ष पूर्व हुई थी।

(२) आदि मनुष्योत्पत्ति कहां-किस स्थानमें हुई थी ?

आरम्भमें यह पृथ्वीका गोला जलसे आच्छादित था। जलके सूखनेपर जो भूभाग-जलसे बाहर निकला वह अपेक्षाकृत कुछ उभरा हुआ-ऊंचा था। जलसे बाहर निकलने पर लाखों वर्ष भूमिके शीतल होनेमें बीते। जब २००० डिगरीकी गर्मीतक ठण्डी हुई तब पृथ्वीपर सर्व प्रथम— उद्भिज = भूमिको तोड फोडकर ऊपरको निकलनेवाली घास, फूस, लता, वृक्ष इत्यादि वनस्पति सृष्टिकी रचना हुई। वनस्पतिके पश्चात्— स्वेदज = मृष्टि मक्खी, मच्छर आदि बने। उनके पश्चात् — अण्डज = अण्डेसे होनेवाले पक्षी और पुनः जरायुज = जरायु नामक गर्भ झिल्ली या थैलीमें बन्द होकर बननेवाले भेड, बकरी, शशक, मृग, गौ, अश्व, गधा आदि निरामिष शष्प घास फूस खानेवाले चतुष्पाद् प्राणि उत्पन्न हुए। उनके पश्चात् द्विपाद जरायुज प्राणि मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई और वन्य, हिंसक, कुत्ता, बिल्ली, शेर, चीता आदि प्राणि भी जरायुज ही कहलाते है, ये भी उत्पन्न हुए। इस उत्पत्तिके विषयमें यह ध्यान रखना चाहिये कि— जिस जिस वर्ग सृष्टि या प्राणि वर्गके जीवनाधार जो भी वस्तु आवश्यक होती है वह उससे पहले बनती है और हिंसक जरायुज प्राणि शेर, चीतादि तो पीछे अथवा निरामिष प्राणियोंसे दूर अगम्य अथवा दुर्गम वनादिमें ही बनाये गये थे।

उक्त चारों प्रकारकी सृष्टि सर्व प्रथम— त्रिविष्टप में ही उत्पन्न हुई थी। क्योंकि वही भू भाग सबसे पहले जलसे बाहर निकल, ठण्डा होकर सृष्टि उत्पन्न करनेयोग्य बना था। इस त्रिविष्टपका ही अपभ्रंशित आजकल तिब्बत नाम रह गया है।

त्रिविष्टपका अर्थ

"विटप विष्टप विशिपोलपा." उणादि कोष ३।१४५ सूत्रसे वित्रपम् और विष्टप, ऐसा रूप होता है, जिसका अर्थ— "विशन्ति यत्रेति विष्टपम् भुवनं वा" अर्थात् जहांपर प्रवेश किया जावे उस स्थानको विष्टप कहते हैं। त्रि = तीन। विशः = प्रजा या सृष्टि = अर्थात् स्वेदज, अण्डज और जरायुज नामक तीन प्रकारकी चेतन प्रजाके निवास प्रवेश या उत्पत्ति स्थानको त्रिविष्टपम् त्रिविष्टपः कहेंगे। इस त्रिविष्टपका ही दूसरा अर्थ यह है कि— आदि मनुष्य समाजकी उत्पत्ति भी वहींपर हुई थी। इसलिये भी उस स्थानका नाम त्रिविष्टप गौणिकार्थ के साथ शुद्ध नाम था। विश नाम मनुष्यका भी है। वेदादि अन्य स्थानोंमें यथा प्रकरण विश नाम मनुष्य और प्रजा वाचक भी आया है।

शतपथ और बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५ आदिमें विस्तृत वर्णन है कि—

आदि मानव सृष्टिमें— देव, मनुष्य तथा असुर नाम भेदसे मनुष्य तीन प्रकारके उत्पन्न हुए थे। उन्हीं भेदोंको गौणिकार्थमें सात्विक, राजसी और तामसी वृत्ति युक्त भी कहा गया है। अतएव सारांशमें यह सिद्ध हुआ कि—

त्रि = देव, मनुष्य, असुर अथवा सात्विक, राजसी व तामसी स्वभावयुक्त तीन प्रकारके—

विशः = मनुष्य या प्रजाके उत्पत्ति व निवासस्थानका नाम त्रिविष्टप कहा जाता है।

टप या टिबा = नीचे ऊंचे— ऊबड़ खाबड़ भू भागको कहते हैं। जैसे कि राजस्थानादि मरूस्थल प्रदेशमें बालूके ऊंचे स्थानको टीबा कहते हैं।

ऐसा नीचा ऊंचा टीबा क्यों होता है ?

मरूस्थलमें तो वायुसे उड़कर रेता कहीं अधिक और कहीं न्यून मात्रामें जमा हो जाता है, अतः उनका वह जमाव ही टीबा कहलाता है।

परन्तु— समुद्रसे बाहर निकल ठण्डे होनेपर पृथ्वीके उस भागमें भी— पृथ्वीके सिकुड़नेके कारण नीचा ऊंचापन हो गया था। और वह चेतन प्राणि सृष्टिके उत्पन्न होने योग्य गुण युक्त था जिसके गर्भमें सब प्राणि और मनुष्य समाजकी उत्पत्ति हुई थी।

(ऋ० ८।९१।५ तथा अथर्व० १८।४।४ आदिके भावानुसार भी यह सिद्ध है कि— आदि मनुष्योत्पत्ति त्रिविष्टपमें ही हुई थी। क्योंकि वही भू भाग सर्वप्रथम जलसे बाहर निकल ठण्डा होकर मनुष्यादि प्राणि जगत्की उत्पत्तिके योग्य तैयार हुआ था।

(अतएव उस त्रिविष्टपमें ही सर्वप्रथम— आदि मनुष्योत्पत्ति हुई थी।)

आदि मनुष्योत्पत्ति कैसे हुई ?

सृष्टिके आरम्भमें शरीरधारी चेतन माता पिता तो किसी भी प्राणिके न थे। उस आदि अमैथुनी सृष्टि-रचनामें पृथ्वी ही सबकी जननी और सूर्य ही जनक था। अथवा यू कहें कि— परमात्माने ही पृथ्वीके गर्भमें द्युलोक सूर्य द्वारा वीर्य-बीज वपन करके सर्व सृष्टि और प्राणि जगत्की उत्पत्ति की थी और करता है। उस आदि सृष्टिको अमैथुनी— बिना माता पिताकी अथवा दिव्य सृष्टि भी कहते हैं। ऋग्वेद १०। सू० १८३ मन्त्र ३ में—

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः। अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जानेभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ ३ ॥

सर्व व्यापक ईश्वरने कहा है कि— मैं ही ब्रह्माण्डके सर्व लोक लोकान्तरोंमें विद्यमान हूँ और संसारकी औषधियों व वनस्पतियोंमें गर्भ स्थापित करता हूं। मैं ही पृथ्वीके गर्भमें सब प्रजाको उत्पन्न करता हूँ। जिनके द्वारा भावी पुत्रोत्पन्न होंगे। उन आदि प्राणियोंको भी मैं पृथ्वीके गर्भमें ही बनाता हूं। ऋ० १०।१८३।३ तथा भौतिक सृष्टि उत्पत्तिका वर्णन ऋ० १०।१८० सू० में भी है।

माताके गर्भमें शरीर कैसे बनता है ?

जैसे कि इस समय माताके उदरमें बालकका शरीर बनता है। उसका प्रकार यह है कि— माताके गर्भमें संलग्न बाल दण्ड-बच्चेकी नाभिसे जुड़ा रहता है। और माता जो कुछ भी खाती पीती है उसीका रस उस नालसे नाभिद्वारा बच्चेके शरीरमें जाकर शरीरको बनाता है। उत्पन्न होनेतक बालक गर्भमें प्रसुप्त दशामें रहता है। उसे बाह्य जगत् और सुख दुःखादिका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। गर्भावस्थामें जितना उसके शरीरमें विकास होना आवश्यक होता है— उतने कालतक ही बालक गर्भमें रहता है। तदनन्तर नाल दण्डसे छूटकर बालक माताके गर्भसे बाहर आ जाता है। और किञ्चित मात्र सुख दु खका भी अनुभव करने लगता है। किन्तु इस मैथुनी सृष्टिमें तो बालकका विकास माताके गर्भमें पूर्ण रूपेण नहीं हो पाता। अतः उत्पन्न होनेके पश्चात् भी अपनी युवावस्था, परिपक्वावस्था—तक उसका विकास शनै शनै होता रहता है। उसकी यह पूर्णता आयुर्वेदानुसार १६ वर्ष कन्या और २५ वें वर्षमें पुरुषके शरीरमें हो जाती है। और इसी आयुमें उन्हें युवती व युवा भी कहते हैं। अर्थात् १६ वर्षकी कन्या और २५ वर्षके पुरुषकी युवावस्था कही जाती है।

इसी प्रकार आदि कालमें त्रिविष्टप नामक पृथ्वीके उस भू भागमें अमैथुनी दिव्य सृष्टिमें— मनुष्यादि प्राणि उत्पन्न हुए थे। जिस समय उस भू भागमें जो ऊंचा नीचा कुछ गर्म व नर्म सा था, उसमें यत्र तत्र गर्त थे। जिनमें वर्तमान मातृगर्भके समान ही मनुष्यादि प्राणि भूमिस्थ नाल दण्डसे सम्बंधित होकर भूमिमाताके रससे ही जीवन रक्षक व पोषक रस लेते हुए निज शरीर निर्माणको प्राप्त होते रहे थे। भूमिके गर्भमें वह मनुष्य अपने शरीरकी युवावस्थातक प्रसुप्त निश्चल-निश्चेष्ट शयनवत् पड़े रहते हैं। युवावस्थाका

अर्थ २०-२५ की वर्षायु ही नहीं प्रत्युत शरीरकी रचना तथा उसकी याथातथ्यता परिपुष्टि होनेका नाम ही युवावस्था है। अर्थात् जो शरीर निज जरायुस्थानसे प्रथक् होने और अन्य स्थानसे मिलनेमें पूर्णत. समर्थ हो, अपनी रक्षा करनेमें किसी अन्यकी अपेक्षा न रखता हो उसे युवा कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें इसे यूं भी कह सकते हैं कि जो अपने कर्तव्य कर्मके करने एवं निज रक्षार्थ- किसी अन्य प्राणिका मुहताज या आश्रित न हो उसे वैदिक परिभाषामें युवा कहते हैं। यही युवा शब्दका शब्दार्थ है।

पृथिवीके गर्भमें मनुष्य शरीर कितने समय तक रहता है ?

पृथ्वीके गर्त-गर्भमें अमैथुनी सृष्टिके मनुष्य शरीर अपनी पूर्ण यौवन अवस्थातक रहते हैं। अर्थात् शरीरके परिपूर्ण होनेतक ही भूगर्भमें पडे रहते व बनते रहते हैं। जैसे लताओंमें लगे हुए ककडी, खरबूजे, तरबूज, काशीफल, पेठा आदि फल लताओंसे रस लेते हुए परिपुष्ट और वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं और पक जानेपर स्वयं ही लता-वृन्तसे प्रथक् हो जाते हैं। तथा जैसे आम आदि वृक्षोंपर लगे हुए फल भी पक जानेपर स्वय ही वृक्ष शाखासे टूट पडते हैं।

इसी प्रकार भू गर्भस्थ शरीर भी अपनी परिपक्व अवस्था (युवावस्था) होनेपर नाल-दण्डसे पृथक् होकर पृथिवीके गर्त-गर्भसे बाहर निकल आते हैं। उनका बाहर निकलना ऐसा ही होता है जैसा कि कोई निद्रासे उठकर कमरेसे बाहर आ जाता हो। वेदमें कहा है—

" ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ॥ ऋ० ५।५९।६

अर्थात् भूमि गर्त-गर्भसे उपरको निकलनेवालोंमें आपसमें न तो कोई छोटा था और न कोई बडा व मध्यम ही था। प्रत्युत बडे तेजके साथ भलिभांति परिपुष्ट एवं समान बल पौरुष युक्त शरीरवाले थे।

तथाच—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ऋ० ५।६०।५

इस मंत्रका भी यही आशय है कि- वे आदिकालमें भूगर्भसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य परस्परमें छुटाई बडाईसे रहित भद्र भाई-भाईके प्रेमवाले युवा और स्व रक्षामें स्वयं समर्थ परिपुष्ट बलवान प्रसन्नात्मा थे (क्योंकि वे सब समान आयु और सामर्थ्यवाले थे। ऐसा ही सारांश सत्यार्थ प्रकाशके ८ वें समुल्लास पृष्ठ १४३ पर (सं० १९८२ वि० में १९ वीं बारका संस्करण) भी लिखा गया है।

यथा—

प्रश्न- आदि सृष्टिमें मनुष्य आदिकी बाल्या युवा व वृद्धावस्थामें सृष्टि हुई अथवा तीनोंमें ?

उत्तर- युवावस्थामें, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालनके लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्थामें बनाता तो उनसे भावी मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्थामें ही सृष्टि की है। पृ० १४३ पंक्ति ५ से—

प्रश्न- सृष्टिके आदिमें एक व अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ?

उत्तर- अनेक। क्योंकि जिन जीवोंके कर्म ईश्वरीय सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जन्म सृष्टिके आदिमें ईश्वर देता है।

क्योंकि— " मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त।"

यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मणमें लिखा है। इस प्रमाणसे यही निश्चय है कि आदिमें अनेक अर्थात् सैंकडों सहस्त्रों मनुष्य उत्पन्न हुए थे। और सृष्टिमें देखनेसे भी निश्चय होता है कि मनुष्य अनेक मां बापके संतान हैं।

सारांश यह कि—

१ आदि मनुष्योत्पत्ति— आज १५।११।५२ ई० से १९७१२२१०५३ वर्ष से पहले हुई थी।

२ आदि मनुष्योत्पत्ति— अमानुषी दिव्य सृष्टि थी और उसका निर्माण ईश्वरने इस पृथ्वीके उच्च स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) के भू गर्भमें किया था। अर्थात् त्रिविष्टप ही आदि मनुष्यका जन्म स्थान था।

२ जैसे इस समयके शरीरमें बालकका शरीर बनता और माताके खाद्यपदार्थोंसे रस आदि तत्त्व लेकर विकसित तथा परिपुष्ट होता है। ठीक उसी प्रकारसे पृथ्वी माताके गर्भमें भी जरायुमें बन्द हो कर बनता रहता है। तब में और अब में केवल इतना ही अन्तर रहता है कि— अब तो माताके उदर-गर्भमें बनता है और तब पृथ्वी माताके गर्भमें। मानुषी माताके गर्भमें तो केवल ९, १०, ११, व १२ मासतक ही रहता है। किन्तु पृथ्वीके गर्भमें अपनी पूर्ण यौवन परिपूर्ण विकसित अवस्थातक रहता है। अर्थात् मानवी माताके गर्भसे निकलकर तो अपनी रक्षार्थ अन्य रक्षकोंके आश्रित रहता है। किन्तु पृथ्वीके गर्भसे बाहर निकलनेपर मनुष्य अपनी रक्षामें पूर्णतया समर्थ होता है।

आरम्भमें– कितने मनुष्य उत्पन्न हुए थे ? उनमें स्त्रियां कितनी और पुरुष कितने कितने थे ? उनके शरीरका परिमाण और आयु कितनी थी ? उनको व्यवहारिक ज्ञान किससे कैसे प्राप्त हुआ ? तथा मानव समाजमें राज्यव्यवस्था कब, कैसे और क्यों हुई ?

आदि प्रश्नोंपर पुनः कदापि लिखा जायेगा।

" सृष्टिकी उत्पत्ति किसने, किससे, कब, कैसे और क्यों की ? " अमुद्रित पुस्तकके आधारपर ही यह लेख लिखा गया है।

धार्मिक परीक्षायें

भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्की विद्या विनोद, विद्या रत्न, विद्या विशारद और विद्या वाचस्पतिकी परीक्षायें आगामी १७ व १८ जनवरीको होंगी। आवेदनपत्र भेजनेकी अंतिम तारीख १० दिसम्बर है। जिन सज्जनोंको आवश्यकता हो वे नवीन पाठविधि और आवेदनपत्र निम्न पतेसे मुफ्त मंगाकर शीघ्र भेजनेकी कृपा करें।

डा० सूर्यदेव शर्मा, एम० ए० डी० लिट
परीक्षा मंत्री

भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्
अजमेर

भारतमें ईसाईमतके प्रचारको कानूनसे रोकना चाहिये।

(ले०- प० श्री० दा० सातवलेकर, अध्यक्ष- स्वाध्यायमण्डल)

भारतमें ईसाईमतके प्रचारको तथा ईसाई पंथमें हिंदुओंके प्रवेशको कानूनद्वारा अतिशीघ्र रोकना चाहिये। इसके ये हेतु हैं। इन हेतुओंका विचार सब हिंदु करें, तथा सब भारतवर्षके लोग भी करें तथा ईसाई और सरकार भी करें।

ईसाई द्वेष बढाते हैं

(१) ईसाईमतका प्रचार भारतमें कानून करके बंद करना चाहिये, इसका मुख्य हेतु यह है कि, वे यहां जातीय द्वेष फैला रहे हैं। ईसाई कहते हैं कि हमारे " ईसाई पथमें आनेसे और ईसापर विश्वास रखनेसे मुक्ति होती है। " पर यह अशुद्ध है, यह असत्य है, क्योंकि बायबलमें कहा है कि " शुद्ध सदाचारसे मुक्ति होती है। " तथा जो ईसा पर विश्वास रखनेसे मुक्ति होती है ऐसे वचन बायबलमें आज दीखते हैं वे मूल बायबलमें नहीं थे। वे वचन स्वार्थी ईसाई पाद्रियोंने पीछेसे मिलाये हैं। इसलिये ईसापर विश्वास रखनेसे मुक्ति होती नहीं है, केवल " सदाचारसे ही मुक्ति होती है " यह सत्य है और यही हिंदुधर्मका सनातन सर्वमान्य और सत्य सिद्धान्त है। सदाचारसे मुक्ति होती है। ईसाईमतवाले अपने पंथमें आनेसे मुक्ति होती है ऐसा भ्रम फैलाकर अज्ञानी लोगोंको फंसा रहे हैं, भ्रम फैला रहे हैं, यह अधार्मिक है, मनुष्योंको गिरानेवाला है। इसलिये इनका प्रचार बंद करना चाहिये।

(२) ईसाई प्रचारक कहते हैं कि, मेरा " ईसाई संप्रदाय ही केवल मानवोंका तारण करता है, अन्य संप्रदाय तारण करनेवाले नहीं हैं। ईसा ही मानवोंका तारण करने वाला है, अन्य साधु संत, पीर पैगंबर, ऋषिमुनि तारण करनेवाले नहीं हैं। " इस कथनसे हिन्दु, पारसी, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत आदि सभी जातियोंके मनोंपर बडा असह्य आघात पहुंचता है। सब अन्य पन्थवालोंके मन इससे दुखते हैं, उनमें ईसाइयोंके विषयमें घृणा पैदा होती है। इस तरह ईसाई प्रचारक इस देशमें जातीय द्वेष फैलाते हैं और जातीय द्वेष बहुत ही बुरा है। जिससे जातीय द्वेष बढेगा वह कार्य एकदम बंद होना चाहिये। और सरकारका भी यह कर्तव्य है कि, जहांसे जातीय द्वेष फैलता है, वह कार्य वह एकदम बंद करे और जातीय शान्तिकी स्थापना करे।

जिस समय ईसाई कहते हैं कि, परम पूजनीय मोहंमद पैगंबर ईसाके पश्चात् आनेके कारण सच्चा देवदूत नहीं, और मोहमद पैगंबरपर विश्वास रखनेसे मानवोंका तारण नहीं होगा। तो यह सुननेपर मुसलमानोंको कैसा बुरा लगता होगा। शिया, सुनी, आगाखानी, अहमदिया आदि सभी मुसलमान इस प्रचारसे बडे असंतुष्ट होते हैं और वैसा होना स्वाभाविक भी है। अपने पीर पैगंबरकी निंदा सुननेसे किसको संतोष होगा। इस तरह ये ईसाई यहां आकर सब मुसलमानोंके दिलोंको दुखा रहे हैं और इस तरह जातिद्वेष फैला रहे हैं। इस कारण यह प्रचार एकदम बंद होना चाहिये।

हिंदुओंके मनोंको तो ये ईसाई बडी गहरी पीडा दे रहे हैं। इन्होंने पुस्तकों द्वारा, लेखों द्वारा और व्याख्यानों द्वारा भगवान् कृष्ण, राम आदि अवतारी पुरुषोंकी इतनी घोर निंदा की है, कि उससे हिंदुओंके अन्तःकरण जल उठे हैं। हिंदुधर्मके ग्रंथों, हिंदुओंके महापुरुषों, हिंदुओंके तीर्थस्थानों, हिंदुओंके अवतारों, हिंदुओंके ऋषि-मुनि-साधु-संतोंकी जो निंदा ईसाई प्रचारकोंने आजतक की है, उसके लिये जगतमें कोई तुलना नहीं है। हिंदु स्वाभाविक प्रवृत्तिसे

शान्त रहे हैं, पर उनमें मनके अन्तःस्तलमें इनके विषयमें संपूर्ण रीतिसे तिरस्कार ही उत्पन्न हुआ है। क्या इस तरहसे दूसरी जातिके अन्तःकरणोंपर निष्कारण आघात करना योग्य है?

हिंदु-मुसलमान-पारसी-जैन आदिके महापुरुषोंकी ऐसी निंदा ये करते हैं और अपने ईसाको सर्वोपरि दर्शाते हैं, इसी कारण सब अन्य धर्मावलंबियोंके मनोंमें ईसाके विषयमें भी तिरस्कार उत्पन्न होता है। जैसी एकने दूसरेको एक गाली दी तो दूसरा उस पहिले गाली देनेवालेको दो गालियां देता है। ठीक ऐसा ही यहां इनके प्रचारसे हो रहा है। ईसा पवित्र आत्मा था, महापुरुष था। पर ईसाको ही सर्वश्रेष्ठ स्थापन करनेकी राजसिक ईर्ष्यासे ये ईसाई प्रचारक, जब सब अन्य धर्मके सभी महापुरुषोंकी अवास्तव निंदा करने लगते है, तब इसका परिणाम यही होता है कि सब अन्य लोग ईसाका ही द्वेष करने लगते हैं। इस तरह यह अयोग्य ईसाई प्रचारकोंका प्रचार ईसाकी निंदा जगत्में होनेके लिये ही, कारण हो रहा है। जिसकी प्रतिष्ठा बढानेकी इच्छा इनके मनमें है, उनकी ही अप्रतिष्ठा हो रही है। दूसरोंकी निंदा करनेसे दूसरे भी इनकी निंदा करने लगते हैं। इस कारण हम कहते हैं कि, यह इनका प्रचारतंत्र भारतवर्षमें बंद होना चाहिये। इससे द्वेष बढ रहा है और इसका परिणाम किसी न किसी समय भयानक होनेकी संभावना है। दूसरेका तिरस्कार जो करता है, उसका तिरस्कार दूसरे करते हैं, यह सार्वकालिक नियम है। दूसरेकी निंदा करनेसे जगत्में शान्ति नहीं रह सकती। ईसाई प्रचारक यह जानें और अपना प्रचार बंद करें और इस भारत देशसे दूर चले जाय। भारत देशमें उनका कोई कार्य नहीं है।

महात्मा गांधीजीका उपदेश

महात्मा गांधीजी इस युगके महापुरुष थे इसमें कोई संदेह नहीं। महात्मा गांधीजी इस युगके 'बुद्ध' अथवा 'ईसा' थे, ऐसा जो कहते हैं, वह सत्य है। हमारे मतसे बुद्ध और ईसासे भी वे बडे थे। इसके अनेक कारण है, पर उनमें एक महत्त्वका हेतु यह है कि, बुद्धने अपना राज्य छोड दिया और ईसाने राज्यशासनमें दखल नहीं दिया था, अर्थात् ये दोनों राजकारणसे बहुत दूर थे। पर महात्मा गांधीजीने तो बुद्ध और ईसाके अहिंसा, दया, सत्य आदि मानवधर्मका प्रचार किया और इन धर्मतत्त्वोंको राजकारणमें प्रयुक्त करके भारत राष्ट्रमें ऐसी बडी शक्ति उत्पन्न की, कि जिसको आजतक कोई जानता ही नहीं था। इस कारण हम कहते हैं कि महात्मा गांधी इन दोनोंसे बढकर थे। इन्हीं महात्मा गांधीजीने ईसाई प्रचारकोंको अनेक बार कहा था कि---

१ अन्य धर्मकी निंदा न करो, अन्य महापुरुषोंकी निंदा न करो, तुम्हारा ही पंथ श्रेष्ठ है, ऐसा भ्रम न फैलाओ।

२ धर्म परिवर्तन न करो।

३ लोगोंकी सेवा करते रहो।

महात्माजीका यह उपदेश योग्य था। पर ईसाई प्रचारकोंने इसको नहीं माना। वे अहंकारसे भरे प्रचारक यह उपदेश क्यों मानेंगे? यह महात्माजीकी शुभ इच्छा थी। यह शुभ इच्छा इस देशमें मूर्त रूपमें लानेके लिये ही हम कहते हैं कि, जिस कारण महात्माजीका सदुपदेश ये मानते नहीं हैं, उसी कारण यहांकी भारत सरकारको उचित है कि, कानून द्वारा इस धर्मपरिवर्तनको तथा अपप्रचारको रोक दें। इसके रोक देनेसे ही महात्माजीकी सदिच्छा सफल और सुफल हो सकती है। ईसाइयोंके प्रचारको न रोकना महात्माजीके विशाल मनपर कठोर आघात करना है। यदि ईसाई प्रचारक दिलसे इस आपत्तिको दूर रखना चाहते है, तब तो वे स्वयं भारतसे जले जाय, नहीं तो उनको कानून द्वारा दूर होना पडेगा। भारतमें हिंदु मुसलमान आदिमेंसे कोई मनुष्य अपने धर्मकी और अपने महापुरुषोंकी निंदा इसके पश्चात् सुननेकी इच्छा नहीं करते। स्वेच्छासे वे चले जाय तो इनमें उनका मान रहेगा।

युरोपमें ईसाकी निंदा

(३) ईसाइयोंके अपप्रचारके कारण युरोपमें भी ईसाकी निन्दा हो रही है। कई ईसाइयोंने खोज करके "ईसा नामक कोई पुरुष हुआ ही नहीं" ऐसा सिद्ध किया है!! दूसरी खोज यह है कि जो ईसाका समय समझा जाता है उसके १०० वर्षोंके उपरान्त कई प्रचारकोंने आजका बायबल संग्रहित किया। यह बायबल ईसाके सामने या ही

नहीं। १०० वर्षोंके पश्चात् सारणने जो कइयोंने लिखा, वह ईसाका सत्य उपदेश कहना अयोग्य है। इस प्रारंभिक संग्रहमें परस्पर विरोधी कथन बहुत हैं। ईसापर विश्वास रखनेसे तारण होनेकी बात प्रारभके बायबलमें नहीं थी। वह पीछेसे घुसेड दी गयी और यह ईसाई प्रचारकोंका किया पाप है। जो इस समय तक चला आ रहा है। यह नितान्त असत्य है। ईसा नामक जो पुरुष पालेस्टाईनमें गया वह हिंदु, ब्राह्मण और बुद्ध धर्मका प्रचारक था। ईसा भारतमें और तिब्बतमें आया था और भारतके तत्त्वज्ञानियोंसे इसने कुछ धर्मका ज्ञान प्राप्त किया था। ईसाके गलेमें यज्ञोपवीत था। इस यज्ञोपवीतके समेत ईसाका चित्र इटलीके पोपके संग्रहालयमें है। इसकी जबसे चर्चा होने लगी, तबसे वह चित्र पोपने अन्दर रख दिया और वह अब किसीको दिखाते नहीं।

इत्यादि प्रकारकी खोज युरोपीय विद्वानोंने लिखी है और अपने ग्रंथोंद्वारा प्रकाशित भी की है। इससे सिद्ध हो रहा है कि ईसा एक काल्पनिक व्यक्ति था। सचमुच ऐसा कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं। यद्यपि हम ईसाई होनेमें सन्देह नहीं करते और उसके महापुरुष होनेमें संदेह नहीं करते, परतु युरोपके विचारक ही उसके विषयमें संदेह करते हैं। यह ईसाई प्रचारकोंके क्रियाकी प्रतिक्रिया है। यह यूरोपमें प्रतिक्रिया देखकर भी ये ईसाई प्रचारक अपनी अयोग्य प्रचार पद्धति बदलते नहीं, यह आश्चर्य है। ये युरोपमें जो मर्जी चाहे करें। भारत वर्षमें इस तरह दूसरों के धर्मका तथा महापुरुषोंका द्वेष किया हुआ सहा नहीं जायगा।

इसका कारण यह है कि, हिंदु लोग सब धर्मों और मतोंके विषयमें आदर भाव रखते हैं। सर्व धर्मसमभाव यहां है। हिंदु किसीके धर्मका, पैगंबरका या आचार्यका कभी द्वेष नहीं करते। हिंदु ऐसा मानते हैं कि सब धर्म, पन्थ और मत समीपके या दूरके मार्गसे ईश्वरके पास पहुंचाते हैं, सब धर्माचार्य अपनी परिस्थितिके अनुसार धर्मका प्रचार करते रहे। परिस्थितिका दोष दूर करके उसके अन्दर सत्यधर्मका दर्शन करना चाहिये। सब धर्मोंमें कुछ न कुछ सचाई है। अतः किसीकी निंदा नहीं करना चाहिये। धर्मका प्रचार करनेवाले अनेक आचार्य हुए, अनेक पैगंबर हुए, और भविष्यमें भी अनेक होंगे। उनमें एक वसिष्ठ हैं, एक बुद्ध है, एक ईसा है, एक मोहंमद है। भविष्यमें भी सहस्रों ऐसे ही आनेवाले हैं। जैसा ईसाई मानते हैं कि अन्तिम पैगंबर ईसा हैं, इसी तरह मोहंमदीय मानते हैं कि, अन्तिम पैगबर मोहंमद है। इसलिये इनमें झगडा होता है। यदि ये मानेंगे कि ईसाके पूर्व जैसे सहस्रों पैगंबर आये थे, वैसे ही ईसाके और मोहमदके पश्चात् भी हजारों आयेंगे। परमेश्वरके पासके पैगंबर समाप्त नहीं होते। उन परमेश्वरके संदेश वाहकोंमेंसे एक ईसा और दूसरा मोहंमद हुआ। यही समाप्ति नहीं है। भविष्यमें भी परमेश्वरके पैगंबर आते ही रहेंगे। ऐसा यदि ईसाई मानेंगे, तो वह हिंदुओंके विचारोंके साथ उनका मेल होगा। पर ये ईसाई प्रचारक ऐसा उदार भाव कदापि रखेंगे नहीं, और दूसरोंके पैगंबरोंकी निंदा करते रहेंगे और द्वेष बढाते ही जायगे। इसीलिये हमारा कथन है कि, इनके प्रचारको बंद करना चाहिये।

जैसा ईसाई कहते हैं कि ईसा अन्तिम पैगंबर है और इसके पश्चात् कोई नहीं आवेगा। वैसा ही मोहमदीय भी कहते हैं कि, मोहंमद अन्तिम पैगबर है और इसके पश्चात् कोई आयेगा नहीं। इस कारण इनमें झगडे होते हैं। पर इसमें और आश्चर्य यह है कि, जिस तरह ईसाके पश्चात् मोहमद आ गया, उसी तरह मोहमद पैगंबरके पश्चात् पजाबमें 'मिर्झा मोहंमद कादियानी' नामक एक पैगबर हुआ। वह ६० वर्ष पूर्व हुआ और उसने कहा कि 'मैं अन्तिम हूं'। इसलिये मुसलमानोंमें और इन अहमदियोंमें बडा झगडा होता है। पाकिस्तानमें श्री झाफरुल्लाखान अहमदिया पथवाला है। इसीलिये उसको हटानेका विचार पाकिस्तानी लोग करते हैं। पुराने विचारके मुसलमान इन नवविचारोंके अहमदियोंको मुसलमान भी नहीं मानते। इनका एक प्रचारक काबूल गया था। वहां इसने प्रचार किया। वहांके मौलवीयोंने इसको पत्थरोंसे मार मारकर खुदाके पास भेज दिया!!! धर्ममें आग्रह करनेवालोंका यही परिणाम है। इसीलिये हिंदु सर्वधर्मसमभाव रखते हैं और अपनी ओरसे ऐसे विषयमें झगडे नहीं करते। हिंदुओंने सर्वधर्मसमभाव रखकर विश्वमें शान्तिका मार्ग बताया है। ईसाई इस मार्गका अवलंबन करें और

दूसरोंकी निंदा करनेसे पीछे हटें और भारतमें अपवित्र विचार न फैलायें।

रेवरन्ड आबट

रेवरंड आबटसाहेब अमेरिकन पादरी पूना आया था। पूनामें वह प्रचार करने लगा और हिंदुओंमेंसे अज्ञजनोंको वह ईसाई धर्ममें लेने लगा। यह देखकर पूनाके एक विद्वान् हिंदूने उससे पूछा, कि "क्या तुमने हिंदुधर्मका अध्ययन किया है।" उसने कहा कि 'नहीं'। फिर उसने रे आबटसे कहा कि 'जब तुम यह कहते हो कि हिंदुधर्म खराब है और ईसाई धर्म अच्छा है, तब तुम्हें हिंदु धर्मको जानना चाहिये।' उसने हिंदुधर्मका अध्ययन करना प्रारंभ किया। वह संस्कृत और मराठी सीखा। और उसने एकनाथ, ज्ञानेश्वर आदि महाराष्ट्रीय सन्तोंके ग्रंथोंका अध्ययन किया, इनके चरित्र अंग्रेजीमें प्रकाशित किये, उनके तत्वज्ञानको अंग्रेजीमें प्रकाशित किया। ४१५ ग्रंथ जब उन्होंने अंग्रेजीमें प्रकाशित किये तब उसका मन बदल गया। उसने अपने अमेरिका मिशनको अमेरिकामें लिखा कि—

"यहां भारतमें सैंकडों ईसा (अर्थात् ईसा जैसे संत महन्त) हैं; यहां ईसाई प्रचारक एक ईसाको बतलाकर क्या करेंगे? इसलिये भारतमें ईसाई धर्मके प्रचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। भारतने आजतक सैंकडों और सहस्त्रों ईसा पैदा किये हैं और भविष्यमें भी भारतसे अनेक ईसा पैदा होंगे। इस कारण भारतमें ईसाई मतका प्रचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। यहांसे ईसाई मतका प्रचार कार्य एकदम बंद करना चाहिये। मैं भारतमें ईसाई मतका प्रचार करने आया। यहां आकर मैंने यहांके मतोंके ग्रंथोंका अध्ययन किया और जान लिया है, कि यह भारतमें तो सत्यधर्मका अगाध समुद्र है। इसलिये भारतवर्षमें कोई ईसाई अपने मतका प्रचार न करे। परंतु यहांसे सत्य धर्मका ज्ञान प्राप्त करे। मैंने ईसाई मतका प्रचार बंद किया है और मैं मिशनका त्यागपत्र देता हूं। आजके बाद मैं ईसाई मत प्रचार नहीं करूंगा। इतना ही नहीं, परंतु मेरी जो संपत्ति अमेरिकामें है, वह करीब आठ लाख रु० की है, वह सबकी सब मैं पूनाके 'भारत इतिहास संशोधक-मंडल' को देता हूं। इस संपत्तिसे भारतीय संत ग्रंथोंके अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होते रहे और यह कार्य भा० इ० सं० मंडल संस्था करे।"

इस तरह रे० आबटने अपने मिशनसे त्यागपत्र दिया, अपनी सब संपत्ति पूनाकी उक्त संस्थाको अर्पण की और स्वयं सन्यास वृत्तीसे रहकर सन्तवाङ्मयकी सेवामें अपना जीवन समाप्त किया।

भारतके ईसाई प्रचारकोंके लिये यह इतिहास बोधप्रद है। यह सच्चा अमेरिकन था। अच्छा विद्वान था। दुराग्रही नहीं था। यदि भारतमें कार्य करनेवाले ईसाई प्रचारक इससे कुछ बोध लेंगे, तो सबका कल्याण होगा। आकाशस्थ प्रभु ईसाइयोंको इस तरहकी सद्बुद्धि प्रदान करे और इनके द्वारा बढाये जानेवाले विद्वेषसे जनताका बचाव करे।

हिन्दू धर्मोंकी माता

हिन्दू धर्मोंकी माता है। इसमें विज्ञान और धर्म पूर्ण समानतामें स्थिर है। यही हिन्दु धर्म सदा दुनियाके दूसरे देशोंकी अध्यात्मिक माताका काम करेगा ही।

वेदान्त धर्मकी विशालता

"हिन्दुओंमें धार्मिक और तत्वज्ञानके विषयमें भिन्न भिन्न ग्रंथ हैं। परन्तु इस देशकी पद्धति और विचारमें वेदान्त श्रेष्ठ है। उपनिषदोंमें हिन्दका तत्व-विचार हमें मिलता है। हिन्दुत्वमें प्रत्येक भिन्न भिन्न प्रकारके मनको सन्तोष हो, इस प्रकारके विचार मिलते हैं।

श्रीमती एनी बेसेन्ट

परीक्षा-विभाग

नागपूर केन्द्र

नवयुग विद्यालय नागपूरके दुय्यम मुख्याध्यापक श्रीयुत **प्रल्हाद केशवजी कोलते** बी. ए. बी टी. के विशेष प्रयत्नोंके फल स्वरूप वहां गुरुवार ता. १२ नवंबरको संस्कृतज्ञोंकी एक सभा हुई। इस सभाका अध्यक्ष स्थान प्राध्यापक श्रीमान् **वर्णेकरजी** सम्पादक 'राष्ट्र शक्ति' एवं 'संस्कृत भवितव्यम्' ने अलङ्कृत किया। राष्ट्रभाषा सम्मेलनके अवसरपर आये हुए मध्य प्रदेश, गुजरात आदि प्रान्तोंके संस्कृत प्रचारक महानुभाव एवं केन्द्र व्यवस्थापक भी पर्याप्त संख्यामें इस अवसरपर उपस्थित थे। सिटि कॉलेजके सभा भवनमें यह कार्यक्रम बडी रोचकताके साथ सम्पन्न हुआ; जिसके लिये उक्त कॉलेजके अधिकारियोंका तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रान्तीय सचालक श्री **हृषीकेशजी शर्मा** का हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ। इस कार्यके लिये न्यू इंग्लिश हाईस्कूल एवं धनवटेनगर विद्यालय (सिटी हाईस्कूल) के अधिकारियों एवं प्रबन्धकोंका पूरा पूरा सहयोग प्राप्त था।

उक्त अवसरपर स्वाध्यायमण्डल-परीक्षा-समितिके परीक्षा-मन्त्री श्रीयुत **महेशचन्द्रजी शास्त्री** एवं मध्य प्रदेशके प्रान्तीय कार्यवाह श्रीयुत **विष्णु त्रिंबक दीक्षितजी** एवं श्रीयुत **प्रभुदयालजी अग्निहोत्री** एम्. ए भी विशेष रूपसे उपस्थित थे। बाहरसे आये हुए प्रतिनिधियोंमें विशेष रूपसे श्रीयुत कृ० गु० देशपाण्डे केन्द्र व्य० सरकारी हाई, चांदूर रेल्वे; श्रीयुत कानिटकर एम्. ए एल. एल. बी. केन्द्र व्य मेहेकर, श्रीयुत डांगे बी ए बी टी. केन्द्र व्य मिन्दी, श्रीयुत ही दे कठाणे बी. ए. बी. टी केन्द्र व्य. पातुर्डा, श्रीयुत उन्हेकरजी बी ए. बी टी. केन्द्र व्य मलकापुर, श्रीयुत त्रि. वा. संत बी ए. बी टी. केन्द्र व्य तेल्हारा; श्रीयुत बापट बी ए बी. टी केन्द्र व्य. सरकारी हाईस्कूल मोर्शी; श्रीयुत एन. एम, व्यास बी ए बी टी. आकोला; श्रीयुत दे. र आम्बेकर काव्यतीर्थ पातुर्डा, श्रीयुत वा गो. नामेरी बी ए, बी टी. बैतूल, श्रीयुत रा. बी. नांदूरकर बी. ए बी. टी उमरखेड, श्रीयुत म सा जोशी लाखनी, श्रीयुत दी के. गोसावी सावनेर, श्रीयुत गजाननशास्त्री बलसाड, श्रीयुत स्वरूपचंद शाह सूरत; श्रीयुत मक्खनलालजी व्यास कतारगांव, श्रीयुत सुबोधचन्द्रजी स्नातक आणद, श्रीयुत प्राणजीवन नरोत्तम राणा, पारडी, श्रीयुत श्रीकान्त जळूकर नसिराबाद आदि उपस्थित थे। नागपूरके संस्कृत प्रेमी व्यक्तियोंमें विशेष रूपसे श्रीयुत डॉ. गो सहस्रबुद्धे एम्. ए, श्रीयुत स. ना कुळकर्णी कार्यनिवृत्त प्रधानाध्यापक; श्रीयुत वि भा मालोडकर तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित विद्वान् भी उपस्थित थे।

सभाका कार्यक्रम ठीक ८-३० बजे प्रारम्भ हो गया। सबसे पूर्व नवयुग विद्यालयकी छात्राओंने स्वागत-गान गाया। स्वागत गानके पश्चात् श्रीयुत **विष्णु त्रिंबक दीक्षितजी** ने अपना प्रान्तीय कार्य विवरण पढकर सुनाया। उन्होंने बताया कि— सन् १९५० से स्वाध्याय मण्डल द्वारा इन परीक्षाओंका सूत्रपात हुआ। इस कार्यके लिये आकोलामें केन्द्र स्थापित कर मैंने परीक्षा समितिके प्रान्तीय कार्यवाहके रूपमें विदर्भ एवं नागपूरका दौरा प्रारम्भ किया। मुझे सर्वत्र शिक्षकों एवं मुख्याध्यापकों द्वारा खूब प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सभीने मुझे बताया कि 'आप तो हमारा ही कार्य कर रहे हैं।' इस प्रोत्साहनके परिणामस्वरूप स्थान स्थानपर केन्द्र स्थापित करनेमें अच्छी सफलता मिली। प्रथम पश्चिम विदर्भमें इन केन्द्रोंकी स्थापना हुई और छात्र तथा छात्राये इन परीक्षाओंमें सम्मिलित होने लगे। इसके पश्चात् पश्चिम विदर्भ एवं पूर्व विदर्भके शिक्षाधिकारियोंको इस कार्यकी पूरी जानकारी भेजी गई। उन्होंने एक परिपत्रद्वारा स्कूलोंमें यह सूचना भेजी कि-'अभ्यासेतर कार्यक्रममें इन संस्कृत परीक्षाओंका अन्तर्भाव किया जाय।'

धीरे धीरे केन्द्र बढने लगे। पश्चिम विदर्भ तथा अमरावतीमें न्यू इं. स्कूलके मुख्याध्यापक श्री **झाडगांवकर** एम्. ए बी टी तथा श्री **वर्णेकरजी** के सहयोगसे अनेक

केन्द्र स्थापित हुए तथा कार्य भी बढ़ने लगा। वहाँ शायद ही कोई हाईस्कूल ऐसा रहा हो जहाँ संस्कृत न पढ़ाई जाती हो। इसके पश्चात् श्रीयुत बाबूराव तेलंग बी. एस् सी बी. टी. के सहयोगसे नागपूरमें कार्य आरम्भ हुआ। वहाँपर नवयुग विद्यालय, महाल तथा धरमपेठ हाईस्कूलमें केन्द्रकी स्थापना हुई। नागपूरके कार्यमें श्रीयुत भैयाजी कोलते तथा श्रीयुत प्रो. वेलणकर, श्रीयुत माम कुळकर्णी श्रीयुत माम. मांढोनी आदि महानुभावोंका हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ। यह कार्य बढ़ता गया तथा वर्धा, हिंगणघाट, सिंदी, सावनेर आदि स्थानोंपर केन्द्रोंकी स्थापना होने लगी।

आजतक आकोला जिलेमें हमारे केन्द्रोंकी संख्या १०, बुलढाणा जिलेमें १०, अमरावती जिलेमें ८, यवतमालमें ७, नागपूर-वर्धामें १०, जबलपुर विभागमें ३ इस प्रकारसे कुल ४७ केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। इस कार्यमें ८८ हाईस्कूलस, १८६ मुख्याध्यापक एव शिक्षक प्रत्यक्ष रूपसे कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक संस्कृतप्रेमी शिक्षक ऐसे हैं जो विनामूल्य एव विना किसी प्रलोभनके कार्य कर रहे हैं। इन सबका जितना धन्यवाद किया जाय उतना थोड़ा है। इस समस्त वातावरणको देखते हुए मुझे तो यह विश्वास होता है कि हमारा यह कार्य मध्य प्रदेशमें अधिकाधिक व्यापक एव लोकप्रिय बनता जायगा।

सौभाग्यकी बात है कि इस सभाके अध्यक्ष श्रीयुत प्रा. वर्णेकर जी की मध्य प्रदेश सरकारने संस्कृत प्रचार कार्यकी जानकारी करानेवाली समितिमें नियुक्ति की है। इसी प्रकारकी दूसरी नियुक्त श्रीयुत प्रभुदयालजी अग्निहोत्री की हुई है और सद्भाग्यसे आज वे भी हमारी इस सभामें उपस्थित हैं। हमें पूर्ण आशा है कि उपर्युक्त दोनों महानुभावोंके सहयोगसे संस्कृत प्रचारके इस कार्यको और भी विशेष गति मिलेगी।

यद्यपि संस्कृत प्रचारके लिये सर्वत्र ही उत्साह एवं उत्सुकता दिखाई पड़ती है तथापि इस कार्यके बीच आनेवाली अनेक अनीउनीय बाधायें भी हैं। किन्तु जब एक बार सब कार्य आरम्भ हो जाता है तो फिर उसमें आनेवाली बाधाएं भी अनेक उपायोंसे दूर होती रहती है।'

प्रान्तीय कार्यवाहके इस निवेदनके पश्चात् श्री परीक्षामन्त्रीजी ने स्वाध्याय मण्डल एवं नवयुग विद्यालय, नागपूर केन्द्रकी ओरसे अध्यक्ष महोदय श्री वर्णेकरजी का स्वागत करते हुए हार अर्पण किया। अध्यक्षीय स्वागतके पश्चात् नवयुग विद्यालयके छात्र-छात्राओं द्वारा संस्कृतमें अन्त्याक्षरीका कार्यक्रम बड़ी रोचकताके साथ प्रस्तुत किया गया। इसके पश्चात् श्रीमान् वर्णेकरजीने अपना अध्यक्षीय भाषण संस्कृत भाषामें प्रारम्भ किया। अपने एक घण्टेके सुन्दर, सरल एव ओजपूर्ण भाषणमें उन्होंने बताया कि-'संस्कृतभाषा अत्यन्त व्यापक है और वह हमारी आदि मातृभाषा है। हम इसे भूलकर अपना सब कुछ खो देंगे। हमें अपने जीवनमें संस्कृतको अधिकसे अधिक स्थान देना चाहिये। भोजनके समय, उपवासके दिन तथा धार्मिक अवसरोंपर हमें जैसी भी संस्कृत आती हो वैसी ही बोलनेका प्रण करना चाहिये। आज चारों ओर प्रान्तीयताका विष फैलता जा रहा है। भाषावार प्रान्तोंके लिये लोग व्यग्र हैं। ऐसी स्थितिमें यदि संस्कृतका प्रचार विशेष रूपसे हो तो उसके परिणामस्वरूप लोगोंमें प्रान्तीयताके भाव नष्ट होकर एकत्वकी भावना निर्माण होगी। मैं आज यहां जो कुछ बोल रहा हूँ वह संस्कृतमें होनेके कारण किसी भी प्रान्तमें मेरा यह भाषण सहज समझा जा सकता है तथा किसीको मेरी इस भाषाके कारण प्रान्तीयताकी कल्पना करनेका भी साहस न होगा, क्योंकि संस्कृतभाषा किसी एक प्रान्तकी भाषा नहीं है। वह तो सारे भारतवर्षकी है और सबकी मूर्धन्य है। सभी भाषाओंका उत्कृष्ट साहित्य ८० प्रतिशत संस्कृतमय है। यह तो ऐसी पूर्ण एवं वैज्ञानिक भाषा है, जिसके आगे विदेशी विद्वान् भी नतमस्तक हैं। स्वाध्यायमण्डल द्वारा संस्कृत प्रचारका जो स्तुत्य प्रसार हो रहा है उसका अभिनन्दन प्रत्येक भारतीय हृदयसे करेगा। श्रीमान् पं सातवलेकरजीने अपना सम्पूर्ण जीवन ही वैदिक वाङ्मयके प्रचार एव संस्कृत भाषाके प्रसारमें लगा दिया है। उनकी संस्था लगभग ३४ वर्षोंसे अनवरत रूपसे जो कार्य कर रही है उसका राष्ट्रीय उत्थानमें एक बहुत बड़ा महत्व है। मैं हृदयसे चाहता हूँ कि यह संस्था खूब फले फूले और संस्कृत भाषाका यह प्रचार कार्य दिन दूना और रात चौगना बढ़ता चला जाय।

इस कार्यके लिये श्रीयुत महेशचन्द्रजी शास्त्री परीक्षा-मन्त्री जिस कार्य कुशलता एवं लगनसे कार्य कर रहे हैं वह अवश्य ही अभिनन्दनीय है। प्रत्येक संस्कृत प्रेमी जनका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह संस्कृत भाषा प्रचारके इस पुण्य कार्यमें इन्हें अपना पूरा पूरा सहयोग दें।'

इस अध्यक्षीय भाषणके पश्चात् निम्नाङ्कित विद्वानोंने संक्षेपमें अपने विचार प्रस्तुत किये - १- श्रीयुत मिश्राजी, २ - श्रीयुत प्रभाकर त्रिंबक पण्डित, ३- श्रीयुत ज्ञानदेव सक्सेना, ४ - श्रीयुत खोत, ५ - श्रीयुत प्रभु दयालजी अग्निहोत्री। इन विद्वानोंने जो विचार व्यक्त किये उनका सार इस प्रकार है - १- उत्तर प्रदेशमें संस्कृत पाठशालाओंकी तथा संस्कृत छात्रोंकी संख्या प्रतिवर्ष घटती जा रही है, हमारे नेता मञ्चोंपर ही केवल संस्कृत-भक्ति प्रदर्शित करते हैं, उन्हें यह पता नहीं है कि बड़े बड़े पण्डित और आचार्य भूखों मर रहे हैं। २ - सरकार अभी-तक सक्रियरूपसे संस्कृतके लिये कोई कार्य नहीं कर पा रही है। उसके मार्गमें बहुतसी बाधायें हैं। ३- हमारी सच्ची राष्ट्रभाषा तो संस्कृत है, हिन्दी तो राजभाषा है। राष्ट्रका अधिक सम्बन्ध संस्कृतभाषाके साथ है न कि हिन्दीके साथ। राज्यका कारभार चलानेके लिये उसे हिन्दीका सहयोग प्राप्त हुआ है; किन्तु उसमें भी संस्कृतके बलपर ही वह टिकी रह सकती है, अतः राष्ट्रभाषा तो वास्तवमें संस्कृत है और हिन्दी राजभाषा है। इत्यादि।

अन्तमें इन सबका समारोप करते हुए परीक्षामन्त्री श्रीयुत महेशचन्द्र शास्त्रीजीने अपने भाषणमें बताया कि- उत्तर प्रदेशमें संस्कृत पढनेवाले छात्रोंकी संख्या भले ही किन्हीं कारणोंसे आज कुछ घट रही हो; किन्तु फिर भी वहाके अनेक गुरुकुलोंका प्रतिदिन बढता हुआ उत्कर्ष एवं संस्कृतकी अनिवार्य आवश्यकताके फलस्वरूप पुनः संस्कृतके छात्रोंकी संख्या वहां बढने लगेगी और प्रत्येक स्कूलमें सबके लिये संस्कृत अनिवार्य हो जावेगी। कुल मिलाकर यह निराशाजनक अवस्था नहीं मानी जा सकती। अन्य प्रान्तोंमें वैसी बात नहीं है। महाराष्ट्रमें टिळक विद्यापीठकी परीक्षायें खूब लोकप्रिय होती जा रही हैं। गुजरात, हैद्राबाद एवं मध्यप्रदेशमें स्वाध्यायमण्डलकी परीक्षाओंमें हजारों छात्र प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। हमारे राष्ट्र चिह्नके नीचे 'सत्यमेव जयते' लिखा हुआ है और राष्ट्रगीतके पद 'वन्दे मातरम्' एवं 'जन गण मन अधिनायक जय हे' भी संस्कृतके हैं। संसद्, राष्ट्रपति, विधान, प्रधानमन्त्री, सेनापति आदि अनेक शब्द एवं राजभवनोंकी भित्तियोंपर अङ्कित अनेक संस्कृत वाक्य आज भी इस बातकी घोषणा करते हैं कि संस्कृत हम सबकी मूर्धन्य भाषा है और उसे मानना गौरवकी बात है। जो संस्कृतके लिये राष्ट्रभाषा पदका व्यवहार करनेके लिये उत्सुक हैं वे अपनी सच्ची निष्ठा इस भाषाके प्रति व्यक्त करते हैं। यद्यपि इनका कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है तथापि हमें अनुशासनकी दृष्टिसे यही मानना उचित है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है। हम संस्कृतके लिये 'मातृ-भाषा' पदका प्रयोग कर सकते हैं।

आज भी संस्कृत प्रचारके कार्यमें अनेक बाधायें हैं; किन्तु धीरे धीरे वे सब दूर होती चली जायंगी। सन् ५० में हमारी परीक्षायें आरम्भ हुईं। वैसे तो जो पाठ्य-पुस्तकें इन परीक्षाओंमें हैं वे आजसे ३० वर्ष पूर्व पूज्य प. सातवळेकरजी द्वारा लिखी गईं थीं तथा इन पुस्तकों द्वारा देशके बडे बडे राजनीतिज्ञ पुरुषोंने अपनी उत्तर आयुमें भी संस्कृतका अभ्यास किया था। आज भी अफ्रीका, काबुल, ब्रिटिश गायना आदि देशोंमें इन पाठ्यपुस्तकों द्वारा संस्कृतका प्रचार हो रहा है। सन् ५० से आजतक केवल तीन वर्षोंमें परीक्षार्थियोंकी संख्या लगभग दस गुना बढ गई है। सारे भारतमें आज हमारे ३५० से ऊपर केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। ऐसी स्थितिमें मैं अपने केन्द्र व्यवस्थापक एवं प्रचारक महानुभावोंसे विशेष आग्रह करूंगा कि वे इस पवित्र कार्यको दूने उत्साहसे आरम्भ करें। ज्ञानकी इस आदिम ज्योतिको मध्याह्नके लखलखाते सूर्यके समान पूर्ण ज्योतिष्मती बना दें। प्रत्येक घरका बालक एवं बालिका संस्कृत सीख लें। हमारे किसी भी उत्सव या समारम्भमें एक विशेष भाग संस्कृतभाषा-युक्त कार्यक्रमका अवश्य हो। जो लोग यह कहते हैं कि हमें कोई ऐसी योजना बनाइये जिसे हम कलसे और अपने घरसे ही आरम्भ कर दें उनसे मुझे यह कहना है कि वे संस्कृत प्रचारिणी सभा, नागपूर द्वारा प्रकाशित दो दो आनेकी छोटी-छोटी पुस्तिकायें अपने घरके पांच वर्षके बालकके हाथमें दें। फिर वे देखेंगे कि सात या छः मासमें ही उनके बालक संस्कृत

बोलने लग गये हैं। मैं संस्कृत प्रचारिणी सभाका तथा इसके मन्त्री श्रीयुत स. ना. कुलकर्णीजीका धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने इतनी सुन्दर पुस्तिकाओंका निर्माण किया। नागपूर मध्यप्रदेशकी राजधानी है। संस्कृत प्रचारिणी सभा संस्कृत प्रचारके लिये यहां बहुत सुन्दर उपक्रम कर रही है। इस सभाका प्रारम्भसे ही हमें सहयोग प्राप्त हो रहा है। अतः हमें आशा है कि इस सभाके सहयोगको पाकर मध्यप्रदेशका हमारा प्रचार-कार्य एक आदर्श स्वरूपको ग्रहण कर लेगा। मैं आजकी इस सभाको वह सफल रूप प्राप्त करानेवाले सभी महानुभावोंका हार्दिक आभार मानता हूं।'

राष्ट्रगीतके पश्चात् यह सभा विसर्जित हुई।

× × ×

आकोला केन्द्र

ता ९-११-५३ को सायं चार बजे श्री मनुताई कन्या शालामें स्थानीय संस्कृत भाषा प्रचार समितिकी एक बैठक सीताबाई आर्ट्स कॉलेजके प्रिंसिपल श्रीयुत जी. डी जोशीजीकी अध्यक्षतामें हुई। परीक्षामन्त्री श्रीयुत महेशचन्द्र शास्त्री भी इस अवसरपर उपस्थित थे। नगर समितिके मन्त्री श्रीयुत वि. ह. पण्डित बी. ए. बी टी ने स्थानीय कार्य विवरण पढकर सुनाया। नगरके लगभग १४ हाईस्कूलोंका पूर्ण सहयोग उन्हें प्राप्त है तथा सभी संस्कृत शिक्षक एवं मुख्याध्यापक अपना पूरा सहयोग इस कार्यमें उन्हें दे रहे हैं। आकोला नगरका प्रचारकार्य बहुत व्यवस्थित एवं एक आदर्श शैलीपर चल रहा है। इसके पश्चात् प्रान्तीय कार्यवाह श्री दीक्षितजीने प्रान्तके प्रचारकार्यकी रूपरेखा बताई। इसके पश्चात् एक संस्कृत अध्यापकने संस्कृतकी गरिमाका वर्णन संस्कृत भाषामें किया। श्री प्रभुदयालजी अग्निहोत्रीने इस बक्त हुए प्रचार कार्यके प्रति अपना सन्तोष व्यक्त किया और अपनी शुभकामना दर्शाई। अध्यक्ष श्रीयुत जोशीजी ने कहा कि पिछले ८-१० वर्षोंमें संस्कृत साहित्यका खूब निर्माण हुआ है। साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकायें पर्याप्त संख्यामें प्रकाशित हुई हैं, साथ ही विभिन्न विषयोंकी अनेक छोटी बडी पुस्तकें भी छपी हैं। फिर भी आज संस्कृतकी उपयोगी छोटी छोटी पुस्तकें निर्माण करनेकी बहुत बडी आवश्यकता है। अब वह समय आ गया है जब कि संस्कृतका प्रचार घर घरमें होगा।

अन्तमें परीक्षामन्त्री श्री महेशचन्द्रजी शास्त्रीने अपने भाषणमें बताया कि स्थानीय समितिको चाहिये कि वह अपने संगठनको विशाल रूप दे। यहां एक अच्छासा संस्कृत पुस्तकालय स्थापित हो। एक ऐसा स्वतन्त्र 'संस्कृत निकेतन' यहाँ स्थापित किया जाय, जहां गीता जयन्ती, कालिदास जयन्ती, विक्रम जयन्ती, एवं अन्य संस्कृत महर्षियोंके स्मृति दिवस मनाये जावें, बालकोंकी अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, वादविवाद प्रतियोगिता आदि हो। इसके लिये एक निधि एकत्रित करनेका उपक्रम किया जाय। यद्यपि यह कार्य कुछ कठिन अवश्य है, किन्तु यदि प्रयत्न आरम्भ कर दिया जाय तो अवश्य ही सफलता प्राप्त हो सकती है। राष्ट्रगीतके पश्चात् यह कार्यक्रम समाप्त हुआ।

× × ×

ता ४-११-५३ से १२-११-५३ तकके अपने मध्यप्रदेशके दौरेमें श्री परीक्षामन्त्रीजीने नागपूर, आकोला, भुसावल, जलगांव, नशिराबाद आदि केन्द्रोंके प्रचारकोंसे वार्तालाप किया तथा इन केन्द्रोंके प्रचार-कार्यकी जानकारी प्राप्त की। सर्वत्र ही अत्यन्त उत्साहपूर्ण वातावरण था। नागपूर नगर, आकोला नगर, भुसावल तथा उसके आसपासके क्षेत्रोंमें प्रचारकी दृष्टिसे अनेक महत्वपूर्ण मुद्दोंपर विचार परामर्श हुआ।

× × ×

श्रीनगर

आर्य समाज कर्णनगर, श्रीनगरके वार्षिक उत्सवके साथ गत मासमें पूर्ण समारोहके साथ एक संस्कृत सम्मेलन मनाया गया। जिसका अध्यक्षपद श्री प० दयाराम शास्त्री, आचार्य, श्री रूपादेवी शारदा विद्यापीठ श्रीनगरने सुशोभित किया। श्री जानकीनाथ, सिद्धान्त शास्त्री, व्यवस्थापक व मंत्री, संस्कृत भाषाप्रचार समितिने अपने प्रारंभिक भाषणमें संस्कृत सम्मेलन मनानेके प्रयोजनपर तथा उक्त शास्त्रीजीके संबन्धमें संक्षिप्त रूपसे भाषण दिया। इसके साथ ही संस्कृत परीक्षाओं, संस्कृत पाठमाला पुस्तकों और कश्मीरके केन्द्रोंके संबन्धमें विस्तारसे लोगोंको

परिचित कराया। कई उत्तीर्ण हुये बालक बालिकाओंको प्रमाणपत्र तथा पुरस्कार वितरण किये गये। महिला महाविद्यालयकी कन्याओंको भी प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके लिये प्रबन्ध किया गया था। कई अन्य सज्जनोंके भाषण भी इस सम्मेलनमें हुये। श्री जानकीनाथजीने सब उपस्थित नरनारियोंसे बलपूर्वक प्रार्थना की कि इस प्राचीन देश और जातिकी संस्कृति और सभ्यता सुरक्षित रखनेके लिये सर्वोत्तम साधन संस्कृत प्रचार है। प्रत्येक मनुष्यका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपने बालक और बालिकाओंको संस्कृत पढनेके लिये प्रेरणा करे और संस्कृत प्रचारमें पूरा सहयोग देवे जिससे हम प्रत्येक गांव और घरमें प्रचार करनेमें समर्थ हो जावें। इतना ही नहीं, हमें तो इस भाषाके संबन्धमें इतना प्रयत्न इस देशमें करना चाहिये ताकि हमारे मुसलमान भाई भी संस्कृत पढनेमें प्रेरित हो जावें। इस देशमें इस अवनत अवस्थामें ऐसे ब्राह्मण अभी भी विद्यमान हैं जो थोडासा प्रयत्न करनेपर इस क्षेत्रमें बहुत ही प्रगति कर सकेंगे। उन्होंने लोगोंको कहा कि संस्कृतका प्रश्न साधारण नहीं है प्रत्युत इस आर्य जातिके जीवन और मृत्युका प्रश्न है। इस कारण हमें इसपर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। इस सम्मेलनमें बालक-बालिका, नर और नारियां पर्याप्त संख्यामें उपस्थित हुये थे। सबपर अद्भुतमय प्रभाव पडा। अन्तमें निम्न दो प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकार किये गये:—

यह सभा श्री रूपादेवी शारदा विद्यापीठके अधिकारियोंसे सानुरोध प्रार्थना करती है कि विद्यापीठकी सब कार्यवाही अंगरेजीके बजाय हिन्दी और यदि हो सके तो संस्कृतमें होनी चाहिये। विद्यापीठमें पढनेवाली कन्याओंको विशेष शिक्षा हिन्दी और संस्कृतमें ही दी जावे और इसके साथ ही उनको कला-कौशल और चरित्र निर्माण संबन्धी शिक्षाका भी प्रबन्ध होना चाहिये।

यह सभा शिक्षा विभागके अधिकारियोंसे बलपूर्वक प्रार्थना करती है कि वह अपनी सब पाठशालाओंमें संस्कृत पाठमाला द्वारा बाल-बालिकाओंको संस्कृत पढानेका प्रबन्ध करें और उन्हें परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेके लिये तैयार करवायें।

नया केन्द्र

संस्कृत-भाषा-प्रचार-समितिकी प्रेरणासे उत्तरसू (काश्मीरमें) एक नया केन्द्र स्थापित करवाया गया है जिसके व्यवस्थापक श्री मधुसूदन ज्योतिषी नियत किये गये।

आपकी कीमती फाउण्टन पेनकी आयु बढानेके लिये

हरिहर फ्ल्यूड

प्रत्येक आकार तथा रंगमें प्राप्त होगा।

इसी प्रकार

कार्यालयोंके उपयोगके लिये।

हरिहर गोंद

रबर केप तथा केप ब्रशके साथ प्रत्येक आकारमें मिलेगा।

प्रत्येक व्यापारीके यहाँ प्राप्त।

बनानेवाले—

हरिहर रिसर्च वर्क्स, मांडवी पोल, अहमदाबाद

स्वाध्याय मण्डलका

रजत जयन्ती महोत्सव

स्वाध्यायमण्डलके प्रति प्रेम रखनेवाले समस्त सज्जनोंको यह जानकर आनन्द होगा कि आगामी मार्गशीर्ष मासमें– (तदनुसार जनवरीके प्रथम सप्ताहमें) इस संस्थाकी रजत जयन्ती मनाई जावेगी। स्वाध्यायमण्डल भारतवर्षकी वह आदर्श संस्था है जिसने अपने जीवनके ३५ वर्षोंमें निरलस होकर वैदिक तत्वज्ञानका अनुसंधान एवं प्रचार देश और विदेशोंमें खूब किया है। भारतका प्राचीन साहित्य उसकी अमूल्य निधि है और इस निधिका वितरण स्वाध्यायमण्डल ने अपने देशवासियों तथा विदेशवासियोंके बीच मुक्त हस्तसे किया है।

आज भी यह संस्था पारडी (सूरत) स्थित आनन्दाश्रमके सुरम्य एवं एकान्त स्थानमें अपना कार्य करती चली जा रही है। ईश्वरकी असीम कृपासे यह कार्य जनताका आदर एवं सहयोग पाकर प्रतिदिन बढता जा रहा है।

वेदमन्दिरका उद्घाटन

३० वर्ष औंध जि. सातारामें इस संस्थाका कार्य हुआ और अब पांच वर्षोंसे इस ऋषि-आश्रमतुल्य रम्य एवं एकान्त स्थानमें उसका कार्य हो रहा है। यह स्थान अमेरिकन मिशनरियोंका था। इस स्थानमें लगभग चालीस वर्ष तक इन्होंने भारतवासियोंको ईसाई बनानेका कार्य किया। अब वही स्थान स्वाध्यायमण्डलके अधिकारमें है। जहां उनका चर्च था वहाँ अब सुन्दर 'वेदमन्दिर' बन गया है। इसके लिये १२०००) रु. का व्यय हुआ, जो जनताने बडी श्रद्धाके साथ हमें दिया है। इस वेदमन्दिरका उद्घाटन भी इसी अवसरपर होगा।

यज्ञ

रजत जयन्तीका यह कार्यक्रम यज्ञसे प्रारम्भ होगा। वैदिक जीवनमें यज्ञका अग्रस्थान है; अतः यज्ञीय धूम्रके पवित्र वातावरणमें वेदमन्त्रोंके उद्घोषके साथ साथ यह शुभ कार्य करनेका निर्णय किया गया है। इसकी समस्त विधियाँ वेदज्ञ विद्वानों द्वारा ही सम्पन्न होंगी। धर्मप्रेमी सज्जनोंसे इसमें सम्मिलित होनेकी विशेष प्रार्थना है।

संस्कृतभाषा--सम्मेलन

स्वाध्यायमण्डल द्वारा गत ३५ वर्षोंसे संस्कृत सीखनेका स्वयशिक्षक पद्धतिसे अध्यापन-क्रम प्रकाशित किया गया था। हजारों लोग इस पद्धतिकी पुस्तकोंका अध्ययन करके संस्कृतके ज्ञाता बने। सन् ५० ई० से संस्थाद्वारा वेद, उपनिषद्, गीता, संस्कृतसाहित्य एवं संस्कृतभाषाका पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया और तदनुसार परीक्षायें लेनेका कार्य भी प्रारम्भ हुआ। आज इन परीक्षाओंमें दस दस हजार परीक्षार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। सारे भारतमें तथा अफ्रीकामें मिलाकर ३५० केन्द्र इस प्रचार कार्यमें सहयोग दे रहे हैं।

इस विशाल कार्यको और भी अधिक विशाल एवं व्यवस्थित बनानेके लिये इसी अवसरपर एक संस्कृतभाषा सम्मेलन मनानेका भी निश्चय हुआ है। जिससे संस्कृत प्रचारकी सभी समस्याओंपर विचार होकर एक प्रशस्त योजनाको हम मूर्तरूप दे सकें। इस विषयमें भारतके अनेक स्थानोंसे विभिन्न सुझाव भी हमारे पास आये हैं। अतः हम अपने केन्द्र-व्यवस्थापकों, प्रचारकों एवं संस्कृतप्रेमी सज्जनोंसे आग्रहपूर्वक निवेदन करते हैं कि वे इस अवसरपर उपस्थित होकर अपना सहयोग हमें अवश्य दें।

आगामी योजना

आजतक स्वाध्यायमण्डलने बिना किसी समारोहके अपना कार्य एक एकान्तवासी योगीराजके समान चुपचाप ही किया है और वैदिक ज्ञानका प्रकाश शतशत गृहस्थो-

तक पहुँचाया है। किन्तु वेद, उपनिषद्, गीता एवं संस्कृत परीक्षाओंके प्रचारकार्यको जनता द्वारा अत्यधिक आदृत होता हुआ देखकर यह सम्मेलन करनेका उपक्रम हुआ है। वैदिक संस्कृतिको पुनः देशभरमें दृढमूल करनेकी भावनासे यहाँ वेद-मन्दिरकी स्थापना हुई है। इसके पश्चात् एक वेद महाविद्यालय निर्माण करनेका विशाल कार्य पूर्ण करना है। इसमें प्रतिवर्ष २५ विद्यार्थियोंको प्रविष्ट करके उन्हें इस योग्य बनाना है कि यहाँसे निकलकर वे मिशनरियोंकी तरह अपने तत्वज्ञानका प्रचार कर सकें। आज अन्य मतावलम्बी यहाँ आकर हमारे आचार, विचार एवं सम्पूर्ण जीवनपर ही एक भिन्न दिशामें प्रभावित कर रहे हैं। इनका सुयोग्य रीतिसे एवं स्थायी रूपसे प्रतिबन्ध करना हो तो उसके लिये योग्य विद्वान् तैयार करना ही एकमेव उपाय है। अत वेद महाविद्यालय की योजना इस अवसरपर प्रस्तुत की जा रही है।

वेद मुद्रण

दूसरी हमारी योजना 'वेदादि धार्मिक ग्रन्थोंके मुद्रण' की है। इन ग्रन्थोंका मुद्रण-कार्य यहाँ हो रहा है। किन्तु इसे अधिक व्यापक एवं सफल बनानेके लिये जनताके उदार सहयोगकी आज अत्यधिक आवश्यकता है। बायबलके मुद्रणके लिये लाखों रुपये प्रतिवर्ष ईसाई दे सकते हैं और कुरानके लिये भी हजारों रुपये मिल सकते हैं तो क्या वेदोंके लिये भारतीय जनता धनद्वारा सहायता न देगी? जिससे कि हमारे पवित्र ज्ञानकी यह पोथी हमारे घर घरमें पहुँच सके।

इस रजत जयन्ती महोत्सवके साथ ही हमें इन समस्त योजनाओंपर गम्भीरतासे विचार करना है। अतः सभीसे हमारा साग्रह निवेदन है कि इस शुभावसरपर पधारकर वे हमें आभारी करें।

१- बृहद् यज्ञके निमित्त, २- वेद मन्दिरके निमित्त, ३- वेद महाविद्यालयके निमित्त तथा ४- वेद मुद्रणके निमित्त जो सज्जन सहायता देना चाहें वे निम्नलिखित पतेसे भेज सकते हैं—

व्यवस्थापक
स्वाध्यायमण्डल, पो किल्ला पारडी
(जि. सूरत)

परीक्षा-विभाग

हैद्राबाद राज्यके लिये

हैद्रा० राज्यके केन्द्रोंकी संस्कृतभाषा परीक्षायें ता० २०-२१ फरवरी ५४ को होंगी। आवेदन पत्र ७ जनवरी तक स्वीकृत किये जा सकेंगे।

पाठ्यक्रमके विषयमें

सन् ५४ की फरवरीकी संस्कृतभाषा परीक्षाओंका पाठ्यक्रम वही रहेगा जो सन् ५३ की परीक्षाओंके लिये था। इस विषयमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं किया गया है।

केन्द्रव्यवस्थापकोंके लिये

केन्द्रव्य० महानुभाव अपने केन्द्रके लिये आवश्यक आवेदन पत्र आदि सामग्री यथा समय मगा ले तथा अपने केन्द्रके सम्पूर्ण आवेदनपत्र शुल्क सहित एक साथ ही भेजें।

प्रमाणपत्र भेजे जा चुके हैं। उनके वितरण समारम्भके वृत्तान्त हमें अवश्य भिजवाये।